पूरे चाँद की रात
की
कृश्न चन्दर एम० ए०

पूरे चांद की रात

कृश्न चन्दर यद्यपि उर्दू के कहानीकार हैं फिर भी उनका नाम भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य-प्रेमी के लिए जाना-पहचाना है और उनकी कहानियां देश के प्रत्येक भाग में पढ़ी और पसंद की जाती हैं।

कृश्न चन्दर की कहानियों के पात्र किसी एक स्थान, किसी एक धर्म और किसी एक वर्ग में सीमित नहीं हैं बल्कि वे यहां-वहां हर जगह फैले हुए हैं। यही चीज़ उनकी कहानियों में ऐसी विचित्रता उत्पन्न करती है कि हम कभी उनकी कहानियों से उकताते नहीं। यह विशेषता प्रेमचन्द और कृश्न चन्दर में समान रूप से मौजूद है।

कृश्न चन्दर की कहानियां भारत की आत्मा की आवाज़ हैं। वे अन्याय, अत्याचार और लूट-खसूट के विरुद्ध आपको अपने कर्तव्य का अनुभव कराती हैं, जिसके शिकार केवल कृश्न चन्दर के पात्र ही नहीं, स्वयं आप भी हैं।

३·००

की रात

कृष्न चन्दर एम० ए०

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

क्रम

दो शब्द

कृश्न चन्दर यद्यपि उर्दू के कहानीकार हैं लेकिन उनका नाम भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य-प्रेमी के लिए जाना-पहचाना नाम है, और यह कृश्न चन्दर की असाधारण सर्वप्रियता का बहुत बड़ा प्रमाण है कि उनकी कहानियां देश के प्रत्येक भाग में पढ़ी और पसन्द की जाती हैं।

यों तो हर व्यक्ति अपने प्रिय लेखक की रचनाएं बड़े ध्यान से और ढूंढ़-ढूंढ़कर पढ़ता है, लेकिन एक अनुवादक एक-एक पंक्ति, बल्कि एक-एक शब्द पर विचार करता है ताकि कहानी की आत्मा दूसरी भाषा के कलेवर में प्रवेश करके कुम्हला न जाए, घायल न हो जाए। मैंने कृश्न चन्दर की निम्नलिखित पुस्तकों का उर्दू से हिन्दी में अनुवाद किया है :

पराजय

मछली जाल

मोबी

पूरे चांद की रात (जो आपके हाथ में है)

और मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूं कि वह क्या चीज़ है जिसने कृश्न चन्दर को समस्त भारत का इष्ट और लोकप्रिय कहानीकार बना दिया है।

पहली चीज़ उनका विशाल अध्ययन है, जीते-जागते जीवन का अध्ययन। इसी कारण कृश्न चन्दर की कहानियों के पात्र किसी एक स्थान, किसी एक धर्म और किसी एक वर्ग में सीमित नहीं हैं बल्कि वे यहां-वहां, हर जगह फैले हुए हैं। यही चीज उनकी कहानियों में रंगारंग विचित्रता उत्पन्न करती है और हम कभी उनकी कहानियों से उकताते नहीं। यह

कृश्न चन्दर के समूचे जीवन के विशाल और गहरे अध्ययन ही की देन है कि वे कभी अपने पात्रों को उनके वातावरण और समाज से अलग करके उपस्थित नहीं करते, क्योंकि वे जानते हैं कि जब मछली जल से निकाल-कर धरती पर लाई जाती है तो वह निर्जीव हो जाती है। और चूंकि वे अपने पात्रों को दिनचर्या के जीवन के साथ उपस्थित करते हैं इसलिए उनके पात्र अपने वातावरण और समाज की 'आलोचना' होते हैं। यह विशेषता प्रेमचन्द और कृश्न चन्दर में समान रूप से मौजूद है।

दूसरी चीज़ जो कृश्न चन्दर के पास है वह कहानी कहने की कला है और इसमें कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। कृश्न चन्दर की कलात्मक निपुणता केवल इस बात में निहित नहीं है कि वे अपने पात्रों को पहचानते हैं बल्कि इसमें भी है कि वे अपने पाठकों को भी पहचानते हैं और अपने पात्र पाठकों में से ही चुनते हैं। परिणामस्वरूप आप यह समझते हैं (और बिलकुल ठीक समझते हैं) कि कहानीकार प्रत्यक्ष रूप से आपसे बात कर रहा है, और वह कहानी जो उसने अभी-अभी आपको सुनाई है स्वयं आप ही की या आपके किसी साथी की या किसी आप ही से व्यक्ति की या किसी इस प्रकार के व्यक्ति की कहानी है जिसे आप अच्छी तरह जानते हैं।

यहां मुझे यथार्थवाद (Realism) के सम्बन्ध में एक बात बहुत स्पष्ट रूप से कहनी है और वह यह कि सलीके और प्रभावशाली ढंग में बात कहना बहुत आवश्यक है। भोंडे, अप्रिय और फुसफुसे ढंग को अपनाने से, जो आप कहना चाहते हैं वह भोंडा, अप्रिय और फुसफुसा हो जाता है। और भोंडी, अप्रिय और फुसफुसी चीज़ से घृणा उत्पन्न हो जाना अस्वा-भाविक नहीं। इस सम्बन्ध में कृश्न चन्दर की शैली के बारे में मुझे यह कहना है कि आप केवल उनकी कड़वी से कड़वी बात सुनना पसन्द ही नहीं करते बल्कि इसकी आपको और इच्छा होती है; और इसका कारण कृश्न चन्दर के कला-कौशल के साथ-साथ उनकी हार्दिक विमलता और मानव-मित्रता है जिससे आपके हृदय भी वञ्चित नहीं हैं। कृश्न चन्दर आपके ये भाव जगाकर आपको अपनी कहानी की रौ में बहा ले जाते हैं।

अन्त में मैं कृश्न चन्दर के तीखे और बेबाक व्यंग के सम्बन्ध में भी दो शब्द कहना चाहता हूं जो उनके पास बहुत ही प्रभावशाली हथियार हैं। व्यंगकला (Satire & Sarcasm) बहुत मुश्किल कला है और एक तूफानी नदी के, केवल एक हाथ चौड़े पुल को पार करने से कम खतरनाक नहीं। ऐसे पुल पर ज़रा-सी चूक का अर्थ मृत्यु होता है और व्यंग की असफलता भी कहानी की मृत्यु के बराबर है। लेकिन कृश्न चन्दर अपनी लेखनी को, अपनी कहानियों के वातावरण को खूब अच्छी तरह पहचानते हैं। इसलिए उनका व्यंग न कभी असफल होता है न अप्रिय, बल्कि भरपूर होता है।

कृश्न चन्दर की कहानियां भारत की आत्मा की आवाज़ हैं। वे अन्याय, अत्याचार और लूट-खसोट के विरुद्ध आपको अपने कर्तव्य का अनुभव कराती हैं जिसके शिकार केवल कृश्न चन्दर के पात्र ही नहीं स्वयं आप भी हैं!

—प्रकाश पण्डित
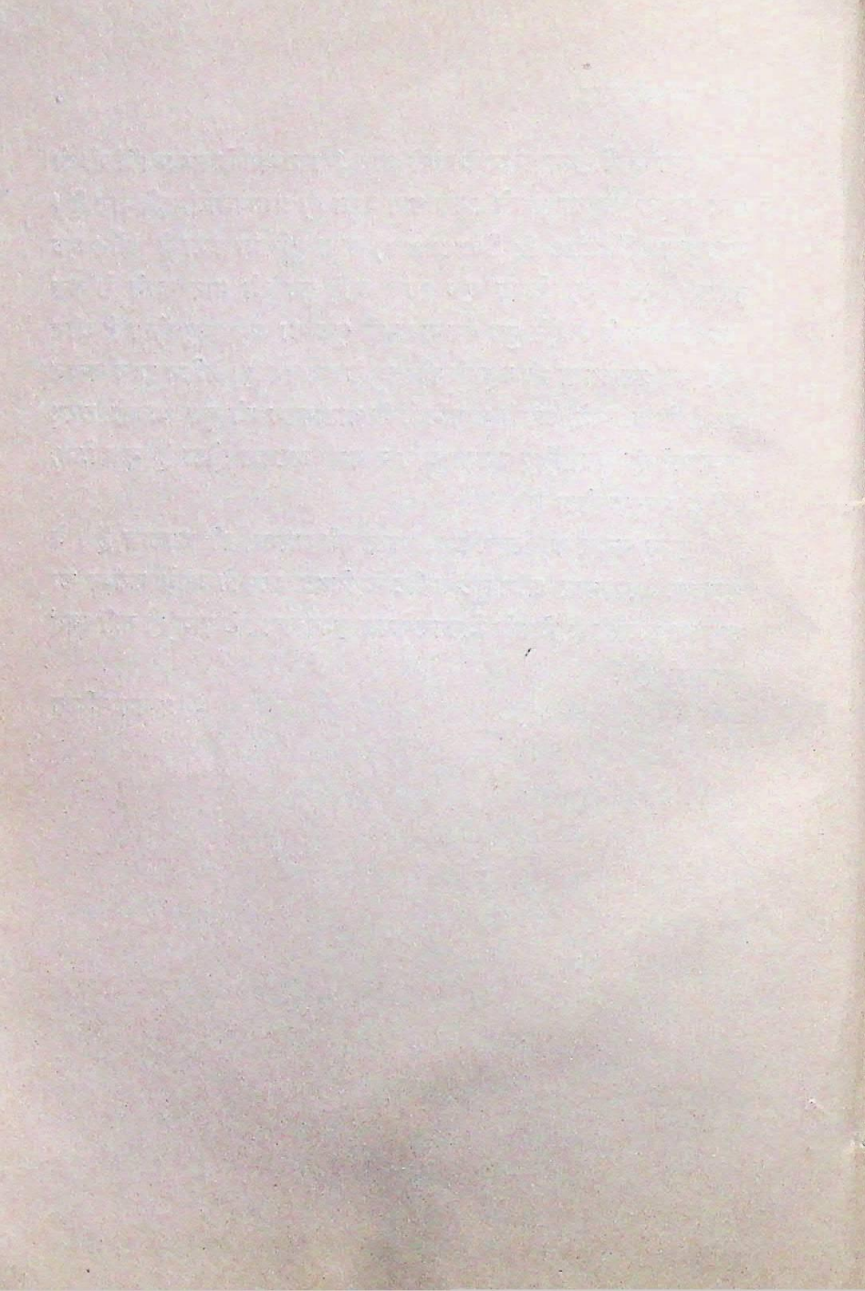
पूरे चांद की रात

अप्रैल का महीना था। बादाम की डालियां फूलों से लद गई थीं और वायु में बरफीली ठण्डक के बावजूद वसन्त ऋतु की-सी सुन्दरता आ गई थी। ऊंची-ऊंची चोटियों के नीचे मखमल-जैसी दूब पर कहीं-कहीं बरफ के टुकड़े सफेद फूलों की तरह खिले हुए नज़र आ रहे थे। अगले मास तक ये सफेद फूल इसी दूब में समा जाएंगे और दूब का रंग गहरा सब्ज़ हो जाएगा; और बादाम की शाखाओं पर हरे-हरे बादाम पुखराज के नगीनों की तरह झिलमिलाने लगेंगे। और नीले-नीले पर्वतों के चेहरों से कुहरा छंटता चला जाएगा; और इस झील के पुल के पार पगडण्डी की धूल मुलायम भेड़ों की जानी-पहचानी 'बा-आ' से झनझना उठेगी; और फिर इन ऊंची-ऊंची चोटियों के नीचे चरवाहे भेड़ों के शरीरों पर से शरद् ऋतु की पली हुई मोटी गफ ऊन कतरते जाएंगे और गीत गाते जाएंगे।

लेकिन अभी अप्रैल का महीना था। अभी चोटियों पर पत्तियां न फूटी थीं। अभी पर्वतों पर बरफ का कुहरा था। अभी पगडण्डी की छाती भेड़ों के स्वर से न गूंजी थी। अभी समल की झील पर कमल के दीप न जले थे। झील का गहरा सब्ज़ पानी अपनी छाती के भीतर उन लाखों रूपों को छुपाए बैठा था जो वसन्त ऋतु के आगमन पर एकाएक इसके स्तर पर एक सरल, मृदु हंसी की तरह खिल उठेंगे। पुल के किनारे-किनारे बादाम के पेड़ों की शाखाओं पर कलियां चमकने लगी थीं। अप्रैल की अन्तिम रात्रि में, जब बादाम के फूल जागते हैं और वसन्त ऋतु के सूचक बनकर झील के पानी में अपनी नौकाएं तैराते हैं, फूलों के नन्हे-नन्हे शिकारे पानी के स्तर पर नृत्य करते हुए वसन्त ऋतु की प्रतीक्षा में हैं।

पुल के जंगले का सहारा लेकर मैं देर से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। तीसरा पहर समाप्त हो गया था और सन्ध्या उतर आई थी। झील वुल्लर को जाने वाले हाउस-बोट पुल की पथरीली महराबों के बीच में से निकल गए थे और अब क्षितिज की रेखा पर कागज़ की नाव की तरह कमज़ोर और बेबस नज़र आ रहे थे। सन्ध्या की लालिमा आकाश के इस छोर से उस छोर तक फैलती गई और फिर लालिमा सुर्मई और सुर्मई से स्याह होती गई, यहां तक की पगडण्डी भी बादाम के पेड़ों की पंक्ति की ओट में सो गई और फिर रात की चुप्पी में पहला सितारा किसी पथिक के गीत की तरह चमक उठा। वायु की शीतलता असह्य होती गई और नथने उसके बरफीले स्पर्श से सुन्न हो गए।

और फिर चांद निकल आया।

और फिर वह आ गई।

तेज़-तेज़ पग उठाती हुई, बल्कि पगडण्डी की ढलवान पर दौड़ती हुई, वह बिलकुल मेरे समीप आकर रुक गई, फिर धीरे से बोली :

"हाय !"

उसका श्वास तेज़ी से चल रहा था। बीच में रुक जाता, फिर तेज़ी से चलने लगता। उसने मेरे कन्धे को अपनी उंगलियों से छुआ और अपना सिर वहां रख दिया। और उसके काले केशों का घना जंगल मेरी आत्मा के भीतर दूर तक फैलता चला गया। और मैंने उससे कहा :

"तीसरे पहर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

उसने हंसकर कहा, "अब रात हो गई है, बड़ी अच्छी रात है यह !"

उसने अपना कोमल, नन्हा-सा हाथ मेरे दूसरे कन्धे पर रख दिया—जैसे बादाम के फूलों से लदी हुई टहनी झुककर मेरे कन्धे पर सो गई।

देर तक वह चुप रही। देर तक मैं चुप रहा। फिर वह आप ही आप हंसी, फिर बोली, "मेरे अब्बा पगडण्डी के मोड़ तक मेरे साथ आए थे क्योंकि मैंने कहा, मुझे डर लगता है। आज मुझे अपनी सहेली राज्जो के घर सोना है। सोना नहीं जागना है। क्योंकि बादाम के पहले फूलों की

खुशी में हम सब सहेलियां रात-भर जागेंगी ग्रौर गीत गाएंगी। ग्रौर इसी-लिए तो तीसरे पहर से इधर ग्राने की तैयारी कर रही थी। लेकिन धान साफ करना था ग्रौर कपड़ों का यह जोड़ा, जो कल धोया था, ग्राज सूखा न था। इसे ग्राग पर सुखाया। ग्रौर ग्रम्मा जंगल से लकड़ियां चुनने गई थी, वह ग्रभी ग्राई न थी; ग्रौर जब तक वह न ग्राती मैं मक्की के भुट्टे ग्रौर सूखी खूबानियां ग्रौर ज़रदालू तुम्हारे लिए कैसे ला सकती थी? देखो, यह सब-कुछ लाई हूं तुम्हारे लिए। तुम तो सचमुच नाराज़ खड़े हो। मेरी तरफ देखो, मैं आ गई हूं। ग्राज पूरे चांद की रात है। ग्राग्रो, किनारे से लगी हुई नाव खोलें ग्रौर झील की सैर करें।" उसने मेरी ग्रांखों में झांका और मैंने उसकी प्रेम ग्रौर हैरानी में डूबी हुई पुतलियों की ग्रोर देखा, जिसमें इस समय चांद चमक रहा था, ग्रौर यह चांद मुझसे कह रहा था, "जाग्रो, नाव खोलकर झील की सैर करो। ग्राज बादाम के पहले फूलों का खुशी-भरा त्यौहार है। ग्राज उसने तुम्हारे लिए ग्रपनी सहेलियों, ग्रपने अब्बा, अपनी नन्ही बहिन, ग्रपने बड़े भाई—सबको धोखे में रखा है, क्योंकि ग्राज पूरे चांद की रात है ग्रौर बादाम के श्वेत ग्रौर शीतल फूल बरफ के गोलों की तरह चारों ग्रोर फैले हुए हैं। ग्रौर कश्मीर के गीत, बच्चे के दूध की तरह, उसकी छातियों में उमड़ ग्राए हैं। तुमने उसकी गरदन में मोतियों की यह सतलड़ी देखी? यह सुर्ख सतलड़ी उसके गले में डाल दी गई ग्रौर उसे कहा गया, "तू आज रात-भर जागेगी। ग्राज कश्मीर की बहार की पहली रात है। ग्राज तेरे गले से कश्मीर के गीत यों खिलेंगे जैसे चांदनी रात में केसर के फूल खिलते हैं—ले, यह सुर्ख सतलड़ी पहन ले।"

चांद ने यह सब-कुछ उसकी हैरान पुतलियों से झांककर देखा। फिर एकाएक किसी पेड़ पर एक बुलबुल चहचहा उठी, दूर नौकाग्रों में दीपक झिलमिलाने लगे ग्रौर चोटियों से परे बस्ती में गीतों का मध्यम स्वर उभरा। गीत ग्रौर बच्चों के कहकहे, ग्रौर पुरुषों की भारी ग्रावाजें ग्रौर बच्चों का मीठा-मीठा चीत्कार। छतों से जीवन का धीरे-धीरे उठता

हुआ धुआं और सन्ध्या के खाने की महक। मछली और भात और कड़म के साग का नरम और नमकीन स्वाद और पूरे चांद की रात का पूरा यौवन। मेरा क्रोध धुल गया। मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और उससे कहा, "आओ, चलें झील पर।"

पुल गुजर गया। पगडण्डी गुज़र गई। बादाम के वृक्षों की पंक्ति समाप्त हो गई। तल्ला गुजर गया। अब हम झील के किनारे-किनारे चल रहे थे। झाड़ियों में मेंढक टर्रा रहे थे। मेंढक और झींगुर और बींडे। उन-का ऊटपटांग शोर भी एक संगीत बन गया था। एक स्वप्नमय वातावरण, सोई हुई झील के बीच में चांद की नाव खड़ी थी निश्चेष्ट, चुपचाप, प्रेम की प्रतीक्षा में--हजारों साल से इसी प्रकार खड़ी थी, मेरे और उसके प्रेम की प्रतीक्षा में ! तुम्हारी और तुम्हारे प्रेमी की मुस्कान की प्रतीक्षा में ! मानव के मानव को चाहने की आकांक्षा की प्रतीक्षा में ! यह पूरे चांद की सुन्दर, निर्मल रात किसी कुमारी के अछूते शरीर की तरह प्रेम के पवित्र स्पर्श की प्रतीक्षा में है।

नाव खूवानी के एक पेड़ से बंधी थी जो बिलकुल झील के किनारे उगा हुआ था। जहां पर ज़मीन बहुत नरम थी और चांदनी पत्तों की ओट से छन-छनकर आ रही थी और मेंढक हौले-हौले गा रहे थे और झील का पानी बार-बार किनारे को चूमता जाता था और बार-बार उसके चुम्बनों का स्वर हमारे कानों में पड़ रहा था। मैंने अपने दोनों हाथ उसकी कमर में डाल दिए और उसे ज़ोर से अपनी छाती से लगा लिया। झील का पानी बार-बार किनारे को चूम रहा था। पहले मैंने उसकी आंखें चूमीं और झील के स्तर पर लाखों कमल खिल उठे। फिर मैंने उसके गाल चूमे और निर्मल वायु के कोमल झोंके एकाएक ऊंचे होकर सैकड़ों गीत गाने लगे। फिर मैंने उसके होंठ चूमे और लाखों मन्दिरों, मसजिदों और गिरजाओं में प्रार्थनाओं

का शोर उठा और धरती के फूल और आकाश के तारे और वायु में उड़नेवाले बादल सब मिलकर नाचने लगे। फिर मैंने उसकी ठोड़ी को चूमा और फिर उसकी गरदन को और कमल खिलते-सिमटते गए, कलियों की तरह। और गीत उभर-उभरकर मौन होते गए और नृत्य धीमा पड़ता-पड़ता थम गया। अब वही मेंढकों की आवाज़ थी, वही झील के नरम-नरम चुम्बन; और कोई छाती से लगा सिसकियां भर रहा था।

मैंने धीरे से नाव खोली। वह नाव में बैठ गई। मैंने चप्पू अपने हाथ में ले लिया और नाव को खेकर झील के मध्य में ले गया। यहां नाव आप ही आप खड़ी हो गई। न इधर बहती थी, न उधर। मैंने चप्पू उठाकर नाव में रख लिया। उसने पोटली खोली। उसमें से ज़रदालू निकालकर मुझे दिए और स्वयं भी खाने लगी।

ज़रदालू सूखे थे और खट्टे-मीठे।

वह बोली, "ये पिछली बहार के हैं।"

मैं ज़रदालू खाता रहा और उसकी ओर देखता रहा।

वह धीरे से बोली, "पिछली बहार में तुम न थे।"

पिछली बहार में मैं न था और ज़रदालू के पेड़ फूलों से लद गए थे और ज़रा-सी-टहनी हिलाने पर टूटकर मोतियों की तरह बिखर जाते थे। पिछली बहार में मैं न था और ज़रदालू के पेड़ फलों से लदे-फदे थे। हरे-हरे ज़रदालू! बेहद खट्टे ज़रदालू—जो नमक-मिर्च लगाकर खाए जाते थे और ज़बान सी-सी करती थी और नाक बहने लगती थी; और फिर भी खट्टे ज़रदालू खाए जाते थे। पिछली बहार में मैं न था और ये हरे-हरे ज़रदालू पककर पीले, सुनहले और लाल होते गए। और डाल-डाल में प्रसन्नता के लाल फूल झूल रहे थे और प्रसन्नतापूर्ण आंखें, चमकती हुई सरल आंखें उन्हें झूमता हुआ देखकर नृत्य-सी करने लगती थीं। पिछली बहार में मैं न था—और सुन्दर हाथों ने लाल-लाल ज़रदालू एकत्रित कर लिए। सुन्दर होंठों ने उनका ताज़ा रस चूसा और उन्हें अपने घर की छत पर ले जाकर सूखने के लिए डाल दिया कि जब ये

ज़रदालू सूख जाएंगे, जब एक बहार गुज़र जाएगी और दूसरी बहार आने को होगी तो मैं आऊंगा और इनके स्वाद से प्रसन्न हो सकूंगा।

ज़रदालू खाकर हमने सूखी हुई खूबानियां खाईं। खूबानी पहले तो कुछ इतनी मीठी मालूम न होती लेकिन जब मुंह के लुआब में घुल जाती तो शहद और शक्कर का स्वाद देने लगती।

"नरम-नरम, बहुत मीठी हैं ये," मैंने कहा।

उसने दांतों से एक गुठली को तोड़ा और खूबानी का बीज निकालकर मुझे दिया, "खाओ।"

बीज बादाम की तरह मीठा था।

"ऐसी खूबानियां मैंने कभी नहीं खाईं।" उसने कहा, "यह हमारे आंगन का पेड़ है। हमारे यहां खूबानी का एक ही पेड़ है मगर इतनी बड़ी, इतनी मीठी खूबानियां होती हैं इसकी कि मैं क्या कहूं! जब खूबानियां पक जाती हैं तो मेरी सब सहेलियां इकट्ठी हो जाती हैं और खूबानियां खिलाने को कहती हैं। पिछली बहार में........."

और मैंने सोचा, पिछली बहार में मैं न था मगर खूबानी का पेड़ आंगन में इसी तरह खड़ा था। पिछली बहार में वह कोमल-कोमल पत्तों से भर गया था, फिर उनमें कच्ची खूबानियों के सब्ज़ और नोकीले फल लगे थे। अभी उनमें कच्ची खूबानियां पैदा हुई थीं और ये कच्चे खट्टे फल दुपहर के खाने के साथ चटनी का काम देते थे। पिछली बहार में मैं न था और इन खूबानियों में गुठलियां पैदा हो गई थीं और खूबानियों का रंग हलका सुनहला होने लगा था और गुठलियों के भीतर नरम-नरम बीज अपने स्वाद में हरे बादामों को मात करते थे। पिछली बहार में मैं न था और ये लाल-लाल खूबानियां, जो अपनी रंगत में कश्मीरी युवतियों की तरह सुन्दर थीं और वैसी ही रसीली, हरे-हरे पत्तों के झूमरों से झांकती नज़र आती थीं। फिर अल्हड़ लड़कियां आंगन में नाचने लगीं और छोटा भाई पेड़ पर चढ़ गया और खूबानियां तोड़-तोड़कर अपनी बहिन की सहेलियों के लिए फेंकने लगा। कितनी मीठी थीं वे पिछली बहार की रस-भरी

खूबानियां...जब मैं न था...खूबानियां खाकर उसने मक्की का भुट्टा निकाला। ऐसी सोंधी-सोंधी सुगन्धि थी—सुनहला सेंका हुआ भुट्टा और मोतियों-जैसी आभा लिए हुए, कुरकुरे दाने और इतना मीठा।

वह बोली, "यह मिसरी-मक्की के भुट्टे हैं।"

"बेहद मीठे," मैंने भुट्टा खाते हुए कहा।

वह बोली, "पिछली फसल के रखे थे घड़ों में, अम्मा की नज़रों से छुपाकर।"

मैंने एक जगह से भुट्टा खाया। दानों की कुछ पंक्तियां रहने दीं, फिर उसने उसी जगह से खाया और दानों की कुछ पंक्तियां मेरे लिए रहने दीं, जिन्हें मैं खाने लगा। और इसी प्रकार हम दोनों एक ही भुट्टे से खाते रहे और मैंने सोचा, यह मिसरी-मक्की के भुट्टे कितने मीठे हैं। यह पिछली फसल के भुट्टे, जब तू थी, लेकिन मैं न था। जब तेरे पिता ने हल चलाया था, खेतों में गोड़ी की थी, बीज बोए थे, बादलों ने पानी दिया था। धरती ने हरे रंग के छोटे-छोटे पौधे उगाए थे, जिनमें तूने नलाई की थी। फिर पौधे बड़े हो गए थे और उनके सिरों पर सुरियां निकल आई थीं और हवा में झूमने लगी थीं और तू मक्की के पौधों पर हरे-हरे भुट्टे देखने जाती थी—जब मैं न था, परन्तु भुट्टों के अन्दर दाने पैदा हो रहे थे। दूध-भरे दाने, जिनकी कोमल त्वचा के ऊपर यदि ज़रा-सा भी नाखून लग जाए तो दूध बाहर निकल आता है, ऐसे नरम और नाज़ुक भुट्टे इस धरती ने उगाए थे और मैं न था; और फिर ये भुट्टे जवान और तगड़े हो गए। उनका रस पक गया। अब नाखून लगाने से कुछ न होता था, अपने ही नाखून के टूटने का भय था। भुट्टों की मूंछें, जो पहले पीली थीं, अब सुनहली और फिर अन्त में काली होती गईं। मक्की के भुट्टों का रंग ज़मीन की तरह भूरा होता गया—मैं जब भी न आया था। और फिर खेतों में खलिहान लगे और खलिहानों में बैल चले और भुट्टों से दाने अलग हो गए; और तूने अपनी सहेलियों के साथ प्रेम के गीत गाए और थोड़े-से भुट्टे छुपाकर, और सेंककर अलग रख दिए, जब मैं न था, धरती थी, उपज थी, प्रेम के गीत थे,

आग पर सेंके हुए भुट्टे थे, लेकिन मैं न था।

मैंने प्रसन्नता से उसकी ओर देखा और कहा, "आज पूरे चांद की रात में जैसे हर बात पूरी हो गई है। कल तक पूरी न थी लेकिन आज पूरी है।"

उसने भुट्टा मेरे मुंह से लगा दिया। उसके होंठों का गरम-गरम सजल स्पर्श अभी तक उस भुट्टे पर था। मैंने कहा, "मैं तुम्हें चूम लूं?"

वह बोली, "हुश ! नाव डूब जाएगी।"

"तो फिर क्या करें?" मैंने पूछा।

वह बोली, "डूब जाने दो।"

वह पूरे चांद की रात मुझे अब तक नहीं भूलती। मेरी आयु अब सत्तर वर्ष के लगभग है, परन्तु वह पूरे चांद की रात मेरे मस्तिष्क में उसी तरह चमक रही है जैसे वह अभी कल आई थी। ऐसा पवित्र प्रेम मैंने आज तक न किया होगा। उसने भी न किया होगा। वह जादू ही कुछ और था जिसने पूरे चांद की रात को हम दोनों को एक-दूसरे से यों मिला दिया कि वह फिर घर न गई। उसी रात मेरे साथ भाग आई। और हम पांच-छह दिन प्रेम में खोए हुए, बच्चों की तरह इधर-उधर जंगलों में, नदी-नालों के किनारे, अखरोटों की छाया-तले घूमते रहे। फिर मैंने उसी झील के किनारे, एक छोटा-सा घर खरीद लिया और उसमें हम दोनों रहने लगे। कोई एक मास के बाद मैं श्रीनगर गया और उससे यह कहकर गया कि तीसरे दिन लौट आऊंगा। तीसरे दिन मैं लौट आया लेकिन क्या देखता हूं कि वह एक नौजवान से घुल-मिलकर बातें कर रही है। वे दोनों एक ही रकाबी में खाना खा रहे हैं। एक-दूसरे के मुंह में कौर डालते जाते हैं और हंसते जाते हैं। मैंने उन्हें देख लिया, लेकिन उन्होंने मुझे नहीं देखा। वे अपने-आपमें इतने खोए हुए थे कि वे किसी भी दूसरी ओर न देख रहे

थे ; और मैंने सोचा कि यह पिछली बहार या उससे भी पिछली बहार का प्रेमी है, जब मैं न था; और शायद आगे और भी कितनी ही ऐसी बहारें आएंगी। कितनी ही पूरे चांद की रातें, जब मुहब्बत एक बदकार स्त्री की तरह बेकाबू हो जाएगी, और नग्न होकर नृत्य करने लगेगी। आज तेरे घर में खिज़ां आ गई है, जैसे हर बहार के बाद आती है। अब तेरा यहां क्या काम ? यह सोच मैं उनसे मिले बिना ही वापस चला गया और फिर अपनी पहली बहार से कभी नहीं मिला।

और अब मैं अड़तालीस वर्ष के बाद लौटकर आया हूं। मेरे बेटे मेरे साथ हैं। मेरी पत्नी मर चुकी है, परन्तु मेरे बेटों की पत्नियां और उनके बच्चे मेरे साथ हैं; और हम लोग सैर करते-करते समल झील के किनारे आ निकले हैं; और अप्रैल का महीना है, और तीसरे पहर से संध्या हो गई है, और मैं देर तक पुल के किनारे खड़ा बादाम के पेड़ों की पंक्तियां देखता जाता हूं, और शीतल वायु में सफेद फूलों के गुच्छे लहराते जाते हैं, और पगडंडी की धूल पर से किसीके जाने-पहचाने कदमों का स्वर सुनाई नहीं दे रहा। एक सुन्दरी हाथों में एक छोटी-सी पोटली दबाए पुल पर से भागती हुई गुज़र जाती है और मेरा दिल धक्-से रह जाता है। दूर,पार चोटियों से परे बस्ती में कोई पत्नी अपने पति को आवाज़ दे रही है। वह उसे खाने पर बुला रही है। कहीं से एक दरवाज़ा बन्द होने का स्वर सुनाई देता है, और एक रोता हुआ बच्चा सहसा चुप हो जाता है। छतों से धुआं निकल रहा है और पक्षी शोर मचाते हुए वृक्षों की घनी शाखाओं में अपने पंख फड़फड़ाते हैं और फिर एकदम चुप हो जाते हैं। कोई नाविक गा रहा है और उसका स्वर गूंजते-गूंजते क्षितिज के उस पार लीन होता जा रहा है।

मैं पुल को पार करके आगे बढ़ता हूं। मेरे बेटे और उनकी पत्नियां और बच्चे मेरे पीछे आ रहे हैं, अलग-अलग टोलियों में बंटे हुए। यहां पर बादाम के पेड़ों की पंक्ति समाप्त हो गई, तल्ला भी निकल गया, झील का किनारा है। यह खूबानी का पेड़ है लेकिन कितना बड़ा हो गया है।

परन्तु यह नाव···यह नाव है, परन्तु क्या यह वही नाव है ? सामने वह घर है। मेरी पहली बहार का घर! मेरी पूरे चांद की रात का प्रेम !

घर में प्रकाश है। बच्चों का शोर है। कोई भारी आवाज़ में गाने लगता है। कोई बुढ़िया उसे चीखकर चुप करा देती है। मैं सोचता हूं, आधी शताब्दी हो गई। मैंने उस घर को नहीं देखा। देख लेने में क्या बुराई है ? आखिर मैंने उसे खरीदा था। देखा जाए तो मैं अभी तक उसका मालिक हूं, देख लेने में बुराई ही क्या है। मैं घर के भीतर चला जाता हूं।

बड़े सुन्दर प्यारे-प्यारे बच्चे हैं। एक युवा स्त्री अपने पति के लिए रकाबी में खाना रख रही है। मुझे देखकर ठिठक जाती है। दो बच्चे लड़ रहे थे। मुझे देखकर आश्चर्य से चुप हो जाते हैं। बुढ़िया, जो अभी क्रोध से डांट रही थी, थंभ के पास खड़ी होती है। कहती है, "तुम कौन हो ?"

मैंने कहा, "यह घर मेरा है।"

वह बोली, "तुम्हारे बाप का है।"

मैंने कहा, "मेरे बाप का नहीं है, मेरा है। कोई अड़तालीस साल हुए मैंने इसे खरीदा था। इस वक्त तो बस योंही मैं इसे देखने चला आया, आप लोगों को निकालने के लिए नहीं आया हूं। यह घर तो अब आप ही का है, मैं तो योंही·········।" मैं यह कहकर लौटने लगा। बुढ़िया की उंगलियां सख्ती से थंभ पर जम गईं। उसने जोर से श्वास भीतर खींचा। बोली, "तो तुम हो······अब इतने साल के बाद कोई कैसे पहचाने··" वह थंभ से लगी देर तक मौन खड़ी रही। मैं नीचे आंगन में चुपचाप खड़ा उसकी ओर ताकता रहा। फिर वह आप ही आप हंस दी। बोली "आओ मैं तुम्हें अपने घर के लोगों से मिलाऊं······देखो, यह मेरा बड़ा बेटा है। यह इससे छोटा है, यह बड़े बेटे की स्त्री है, यह मेरा बड़ा पोता है, सलाम करो बेटा ! यह पोती······यह·····यह मेरा खाविन्द है, हश ! इसे जगाना नहीं, परसों से इसे बुखार आ रहा है, सोने दो इसे······"

वह फिर बोली, "तुम्हारी क्या सेवा करूं ?"

मैंने दीवार पर खूंटी से टंगे हुए मक्की के भुट्टों की ओर देखा—सेंके हुए भुट्टे, सुनहले मोतियों के से चमकीले दाने।

हम दोनों मुस्करा दिए।

वह बोली, "मेरे तो बहुत से दांत झड़ चुके हैं, जो हैं वे भी काम नहीं करते।"

मैंने कहा, "यही हाल मेरा भी है, भुट्टा न खा सकूंगा।"

मुझे घर के भीतर घुसते देखकर मेरे घर के लोग भी भीतर चले आए थे। अब खूब चहल-पहल थी। बच्चे शीघ्र ही एक-दूसरे से मिल-जुल गए।

हम दोनों धीरे-धीरे बाहर चले आए। धीरे-धीरे झील के किनारे चलते गए।

वह बोली, "मैंने छह साल तक तुम्हारी बाट देखी, तुम उस दिन क्यों नहीं आए?"

मैंने कहा, "मैं आया था, लेकिन तुम्हें किसी दूसरे नवयुवक के साथ देखकर वापस चला गया था।"

"क्या कहते हो?" वह बोली।

"हां, तुम उसके साथ खाना खा रही थीं; एक ही रकाबी में और वह तुम्हारे मुंह में, और तुम उसके मुंह में कौर डाल रही थीं।"

वह एकदम चुप हो गई, फिर ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी।

"क्या हुआ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

वह बोली, "अरे, वह तो मेरा सगा भाई था।"

वह फिर ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी। "वह मुझसे उसी दिन मिलने के लिए आया था। उसी दिन तुम भी आने वाले थे। वह वापस जा रहा था। मैंने उसे रोक लिया कि तुमसे मिलकर जाए—लेकिन तुम न आए।"

वह एकदम गंभीर हो गई। "छः साल तक मैंने तुम्हारा इन्तजार किया। तुम्हारे जाने के बाद खुदा ने मुझे बेटा दिया, तुम्हारा बेटा, लेकिन एक साल बाद वह भी मर गया। चार साल और मैंने तुम्हारी राह देखी, मगर तुम नहीं आए, फिर मैंने शादी कर ली।"

दो बच्चे बाहर निकल आए। खेलते-खेलते एक बच्चा दूसरी बच्ची को मक्की का भुट्टा खिला रहा था।

उसने कहा, "वह मेरा पोता है।"

मैंने कहा, "वह मेरी पोती है।"

वह दोनों भागते-भागते, झील के किनारे-किनारे, दूर तक चले गए। हम देर तक उन्हें देखते रहे। वह मेरे निकट आ गई। बोली, "आज तुम आए हो तो मुझे अच्छा लग रहा है। मैंने अब अपना जीवन बना लिया है। इसकी सारी खुशियां और ग़म देखे हैं। मेरा हरा-भरा घर है, और आज तुम भी आए हो। मुझे ज़रा भी बुरा नहीं लग रहा है।"

मैंने कहा, "यही हाल मेरा है। सोचता था, जीवन-भर तुम्हें नहीं मिलूंगा। इसीलिए इतने साल इधर कभी नहीं आया। अब आया हूं तो रत्ती-भर भी बुरा नहीं लग रहा।"

हम दोनों चुप हो गए। बच्चे खेलते-खेलते हमारे पास वापस आ गए। उसने मेरी पोती को उठा लिया, मैंने उसके पोते को, उसने मेरी पोती को चूमा, मैंने उसके पोते को, और हम दोनों प्रसन्नता से एक-दूसरे की ओर देखने लगे। उसकी पुतलियों में चांद चमक रहा था और वह चांद आश्चर्य से और प्रसन्नता से कह रहा था, "मनुष्य मर जाते हैं, परन्तु जीवन नहीं मरता। बहार समाप्त हो जाती है, परन्तु फिर दूसरी बहार आ जाती है। छोटे-छोटे प्रेम भी समाप्त हो जाते हैं, परन्तु जीवन का महान, सच्चा प्रेम सदैव स्थिर रहता है। तुम दोनों पिछली बहार में न थे। यह बहार तुमने देखी, इससे अगली बहार में तुम न होगे, परन्तु जीवन होगा और प्रेम भी; और जवानी भी होगी और सौंदर्य और माधुर्य और सरलता......"

बच्चे हमारी गोद से उतर पड़े, क्योंकि वे अलग खेलना चाहते थे। वे भागते हुए खूबानी के पेड़ के निकट चले गए जहां नाव बंधी हुई थी।

मैंने पूछा, "यह वही पेड़ है।"

उसने मुस्कराकर कहा, "नहीं, यह दूसरा पेड़ है।"

अजन्ता से आगे

प्रातः कोई छह बजे का समय होगा। लारी का भोंपू बड़े ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाया। दो-तीन मिनट तक चिल्लाता रहा, फिर चौकीदार मुझे बुलाने के लिए आया। मैं बड़ी मुश्किल से तैयार होकर औरंगाबाद के उस जीर्ण मीनारे के पास पहुंचा, जहां लारी खड़ी थी, और मुसाफिर मुझे गालियां दे रहे थे। औरंगाबाद के उस जीर्ण मीनारे पर किसी युग में मशालें जलाई जाती थीं ताकि सड़क पर उजाला रहे। इस समय यह मीनारा लारियों के अड्डे का काम देता है। लारी बिलकुल मीनारे के साथ लगकर खड़ी थी, गहरी छाया में—उस वेश्या की तरह जो संतरी की नज़रों से बचकर किसी अंधेरे कोने में खरीदार के इन्तज़ार में खड़ी हो। मैं पहुंचा तो लारी तुरन्त चल दी। धुंध में लिपटा हुआ मीनारा बहुत दूर पीछे रह गया। सर्दी बहुत अधिक थी, या मुझे ही लग रही थी। मैंने अपना चारमीनार का सिगरेट होंठों में दबाया और लारी के अन्दर इधर-उधर देखने लगा।

सब लोग मुझे घूर-घूरकर देख रहे थे। क्योंकि मैं ही सबसे अन्त में आया था। कमाल तो यह है कि तहसीलदार साहब भी, जो ड्राइवर के साथ सबसे आगे बैठे हुए थे, समय पर आ गए थे और पुलिस-इन्सपैक्टर भी। लेकिन मेरे जैसा साधारण व्यक्ति, जो न कोई अफसर था न कोई रईस, न जागीरदार, और जिसने प्रातः उठकर नाश्ता भी न किया था, और जिसके पास खाने-पीने का कोई सामान भी न था, इतनी देर में पहुंचा था। यह तो अच्छा हुआ कि मैं डाक-बंगले में ठहरा हुआ था, और हैदराबाद से एक सिफारिशी चिट्ठी भी ले आया था, अन्यथा लारी इतनी देर तक मेरे लिए

कहां रुकती ?

तब लोगों ने मुझे घूरकर देखा। मेरे उलझे हुए काले बालों को, मेरे फूले हुए गालों को, मेरी मोटी नाक को, मेरे सूखे होंठों को, और बड़ी-बड़ी भवों के भीतर गढ़ों में चमकती हुई मैली आंखों को; और फिर प्रत्येक व्यक्ति को अपनी गलती का अनुभव हुआ कि लारी एक ऐसे निर्धन, बेकार और देखने में चार सौ बीस प्रकार के व्यक्ति के लिए क्यों रोकी गई। तहसीलदार साहब बुड़बुड़ाए। पुलिस इन्सपैक्टर ने होंठों ही होंठों में मां-बहिन की सुनाई; और जब मैंने साथ बैठे हुए लोगों से माचिस मांगी तो हरेक ने इनकार कर दिया। मैं देर तक चारमीनार का सिगरेट मुंह में लिए उससे खेलता रहा और सड़क के आर-पार फैले हुए, गुज़रते हुए, मैदानों-घाटियों, और बंजर भूमि को देखता रहा कि जिनकी छाती लारी के दिल की तरह थी।

मेरे साथ दो अपटुडेट लड़के बैठे थे। यही कोई तेईस-चौबीस के जवान होंगे। चेहरे से कालेज का खिलंडरापन प्रकट होता था। नईम और वसीम बड़े सुन्दर लड़के थे। सुन्दर वस्त्र पहने हुए थे। दोनों के पास कैमरे थे, और कीमती फाउंनटेनपैन, और दूरबीन, और पैकट में सूखा नाश्ता। नईम ने पाइप सुलगाया और माचिस को फिर अपनी जेब में रख लिया। मैंने अपने चारमीनार को अपने सूखे होंठों में घुमाते हुए उससे कहा,

"हरामज़ादे, ज़रा माचिस तो दे दो।"

वह बहुत भिन्नाया। लगभग अपनी सीट से उछल पड़ा। बोला, "क्या बक रहे हैं आप? आप कौन हैं?"

मैंने कहा, "मैं तुम्हारा बाप हूं। ज़रा माचिस तो दो, फिर सब हाल बताता हूं।"

उसने कुछ आश्चर्य से, कुछ बेदिली से, कुछ क्रोध से, कुछ दिलचस्पी से मुझे माचिस दे दी। मैंने सिगरेट सुलगाया और माचिस बाहर फेंक दी, और फिर मुंह मोड़कर कश लेने लगा, और लारी से बाहर देखने लगा। एक मज़बूत हाथ मेरी गर्दन पर पड़ा।

"सूअर !" यह नईम था।

मैंने कहा, "मेरे पास माचिस नहीं थी, तुम्हारे पास थी। मैंने मांगी, तुमने नहीं दी। मैंने यह चाल चली। चाल सफल हो गई। तुमने सोचा, शायद मैं तुम्हारा लंगोटिया निकलूंगा, लेकिन मैंने आज से पहले तुम्हें कभी नहीं देखा। इस सफर के बाद देखने की आशा भी नहीं रखता। अब तुम मुझे लारी से नीचे फेंक सकते हो।"

वसीम मुस्कराने लगा। नईम से बोला, "कोई सिड़ी-सौदाई मालूम होता है। जाने दो गरीब को।" फिर मुझे सम्बोधन करके बोला, "अब के तुमने कोई ऐसी हरकत की तो मैं तुम्हें पुलिस-इंस्पैक्टर के हवाले कर दूंगा।"

पुलिस-इंस्पैक्टर साहब ने मुझे मां की गाली दी, और कहा कि वे मुझे जान से मार डालेंगे। मैंने कहा कि वे कदापि ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि मैं हैदराबाद से नवाब फलां जंग बहादुर की, जो न बहादुर हैं और न कभी जिन्होंने किसी जंग में भाग लिया है, सिफारिशी चिट्ठी लाया हूं, और अजन्ता देखने जा रहा हूं, और कोई माई का लाल मुझे नहीं रोक सकता।

नवाब का नाम सुनकर पुलिस-इंस्पैक्टर के कान खड़े हो गए, और तहसीलदार साहब के होंठ लटक गए। नईम और वसीम ने एकसाथ पूछा, "आप नवाब फलां जंग बहादुर को जानते हैं ?"

"जानता हूं," मैंने चिढ़कर कहा, "मैं उनके साथ शराब पी चुका हूं। उनके साथ रंडियों से प्रेम-क्रीड़ा कर चुका हूं, और उनके साथ नंगा नाच चुका हूं। उनकी बीवी का प्राइवेट सेक्रेटरी रह चुका हूं। मैं नहीं जानता तो क्या तुम जानते हो उसे, कालेज के कल के लौंडे ?"

"तमीज़ से बात करो जी!" यह सामने की सीट पर बैठी हुई एक सुन्दर लड़की थी। उसका नाम नज़हत था। लोग प्यार से, विशेषकर वसीम, उसे 'नाज़' कहता था। बहुत प्यार आता तो नाज़ो कह देता, और यह महिला भी किसी नातजुर्बाकार मुर्गी की तरह पंख फड़फड़ाती और कुड़-

कुड़ाती और प्रसन्न होकर वसीम की ओर ऐसे देखने लगती जैसे वह अभी किसी दिलेर मुर्ग़ की तरह ढूंग मारने पर उतारू हो और आप वार सहने पर तैयार हो। मैंने बड़ी घृणा से उसकी ओर देखा और कहा, "देवी! आपका प्रेम अभी कच्चा है। हो सकता है रास्ते ही में टूट जाए, आप अभी से वसीम का पक्ष न लें।"

इसपर नज़हत की बहिन नकहत, जो उसके साथ ही बैठी थी, और उतनी ही सुन्दर और नाज़ुक थी, क्रोध से लाल-भभूका होकर बोली, "इस बदतमीज़ आदमी को लारी से नीचे उतार दो, नहीं तो हम लोग उतर जाते हैं।"

नईम ने मुझे गर्दन से पकड़ लिया और कहा, "बच्चाजी !"

नज़हत और नकहत की बड़ी बहनि रिफत, और उसका होने वाला पति जमील, और रिफत का भाई—सब लोग मेरे गिर्द हो गए। एक मुसीबत-सी खड़ी हो गई। लारी रुक गई। वह सब लोग मुझे लारी से नीचे धकेलने लगे।

मैंने जेब से फलां जंग बहादुर का दिया हुआ राहदारी का परवाना निकाला और कहा, "है कोई माई का लाल जो इस परवाने के होते हुए मुझे हाथ लगा सके। मैं एक-एक को चुन-चुनकर जेल भिजवा दूंगा। यह पढ़ो खत। मैं हर जगह जा सकता हूं।"

"देखा जाएगा"—नईम और वसीम और जमील ने कहा।

सुन्दर लड़कियां मौन हो गईं। स्त्रियां स्थिति को शीघ्र ही पहचान लेती हैं।

तहसीलदार साहब ने कहा, "आप इन लड़कियों से माफी मांगिए और आगे सफर में चुप रहने का वायदा कीजिए। मैं मानवता के सम्बन्ध से आपसे प्रार्थना करता हूं।"

मैंने कहा, "और मैंने भी एक मानव के रूप में, एक भेड़िये के तौर पर नहीं, आपसे माचिस मांगी थी और आपमें से किसीने नहीं दी। खैर, मैं आपकी प्रार्थना स्वीकार करता हूं, क्योंकि फलां यार जंग बहादुर मेरे मित्र

हैं और हर जगह मुझे उनका आदर करना है इसलिए...।"

इसलिए मैंने नज़हत से, रिफत से, नकहत से क्षमा मांगी। वसीम से भी, जो नज़हत को चाहता था, लेकिन लारी में कुछ न कर सकता था; और जमील से भी जो नकहत का भावी पति था और बार-बार उसकी सुन्दर उंगलियों को छू लेता था। उल्लू समझता था कि कोई उसे देख नहीं रहा है, और रिफत, जो अपने सौन्दर्य पर स्वयं ही मरी जा रही थी, यद्यपि उसका चाहने वाला नईम भी वहीं उसी लारी में बैठा था—मैंने सब लोगों से क्षमा मांगी। पुलिस-इन्सपैक्टर और तहसीलदार से भी और सेठ दाहरजी बजूरिया और उनके गुमाश्ते और उनके साथ लम्बे-लम्बे बालों वाले कलाकार लौंडे से भी। क्लीनर से भी, और ड्राइवर से भी। अन्त में मैंने नवाब फलां जंग बहादुर का वह पत्र भी फाड़ दिया और सब लोग मुझसे सन्तुष्ट होकर लारी में बैठ गए। और लारी आगे चली।

मैंने सेठ दाहरजी बजूरिया से पूछा, "आप भी अजन्ता देखने जा रहे हैं?"

"जी!"

"वह क्यों, वहां तो कोई बिज़नेस नहीं है।"

वह हंसा, "हम उधर से साड़ियों के अच्छे-अच्छे डिज़ाइन लाते हैं।" उसने कलाकार लौंडे की ओर संकेत करते हुए कहा, "यह हमारा आदमी इन डिजाइनों की नक़ल उतारता है और फिर हमारे मिल में साड़ी पर यह डिज़ाइन छपता है और लाखों की साड़ी बिकता है। हमारे मिल के साड़ी का डिज़ाइन बहुत प्रसिद्ध है।"

मैं आर्टिस्ट लौंडे की ओर देखकर मुस्कराया। उसने मुझे हाथ जोड़कर नमस्कार किया। फिर मैंने उसे हाथ जोड़कर नमस्कार किया। तो उत्तर में उसने फिर मुझे हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उसके बाद मैंने फिर उसे हाथ जोड़कर नमस्कार करना चाहा कि लारी एक गढ़े से गुज़र गई और जैसे एक भूचाल से गुज़र गई। नज़हत अपनी सीट से उछलकर मेरी गोद में आ गिरी। मैंने वसीम से कहा, "संभालो अपनी मुर्गी को!"

इसपर जमील ने मुझे याद दिलाया कि मैंने चुप रहने का वायदा किया था; और नकहत ने कहा कि अब चूंकि मेरे पास फलां जंग बहादुर का पत्र भी नहीं रहा इसलिए ज़बान पर पहरा रखना होगा। अतएव मुर्गी चुपचाप अपनी सीट पर बैठ गई और अपने पर-पुर्ज़े ठीक करने लगी। और मैंने यह समझकर कि इस लारी के जंगली और असभ्य लोग मेरी सुन्दर सभ्यता के पात्र नहीं हो सकते, चारमीनार का सिगरेट सुलगाया और लारी से बाहर के संसार में चला गया।

सड़क से कुछ दूर जाम का झाड़ खड़ा था। उसकी छाया में पचास-साठ किसान एकत्रित थे। अर्धनग्न काले-भुजंग किसान एक दायरा-सा बनाए खड़े थे। उनके हाथों में लाठियां थीं। दिल में संकल्प था और आंखों में एक कठोर-पथरीली-सी चमक थी, जैसे वार करते समय कोबरे की आंखें चमकती हैं—उन किसानों की आंखों में उस समय उसी प्रकार की चमक थी, उन किसानों के बीच में नारायणराव रेड्डी खड़ा था।

रेड्डी ने पूछा, "तो तुम लोग भूमि-कर नहीं दोगे ?"

किसान बोले, "नहीं।"

"जागीरदार का भाग भी नहीं दोगे !"

एक किसान बोला, "राजा साहब, अगर आप मर भी जाएं तो उनके श्मशान-भूमि तक ले जाने का खर्च भी नहीं दे सकते हम लोग।"

किसान नौजवान था और हाथ-पांव का तगड़ा, और उसकी मुट्ठियां ज़ोर से भिची हुई थीं।

रेड्डी ने उसकी ओर बड़े ध्यान से देखा और फिर रिवाल्वर से फ़ायर कर दिया।

किसान गिर पड़ा और उसके ऊपर उसकी मां गिर गई, और दोनों हाथ ऊपर उठाकर बोली, "पिछले साल राजा मेरी बेटी ले गए थे—मेरी कंवारी बेटी, जो तुममें से किसीका नन्हा-सा घर बसाती। वह बेटी मुझे आज तक नहीं मिली। सुना है वह राजा के महल में नौकरानी है और एक हरामी लड़की की मां। मेरी कंवारी, बिन ब्याही लड़की ! आज मेरा बेटा

भी मालिक ने मुझसे छीन लिया। पंचायतवालो, मेरा न्याय कहां होगा ?"

किसानों ने लाठियां संभालीं। रेड्डी ने रिवाल्वर से फायर किए। फायर होते गए। किसान आगे बढ़कर मरते गए। फिर गोलियां समाप्त हो गईं और लाठी का एक भरपूर वार रेड्डी की खोपड़ी पर पड़ा और उसका भेजा बाहर निकल आया। किसानों ने एक विषैले सांप की तरह उसे वहीं कुचल दिया और फिर वे बुढ़िया के बेटे के गिर्द एकत्र हो गए।

बुढ़िया ने कांपते हुए स्वर में कहा, "यह मेरे बेटे का खून है। इसी खून में मेरी बेटी की पत भी धुली हुई है।" उसने अपनी उंगली अपने बेटे के बहते रक्त में डुबोकर कहा, "जो आज से राजा का किसान नहीं है, प्रजा का किसान है, मैं उसे यह तिलक लगाऊंगी, जो आज से अपने गांव, अपने घर, अपनी धरती, अपनी फसल की रक्षा करेगा, यह लाल तिलक उसके माथे पर होगा। आगे बढ़ो !"

किसान एक-एक करके आगे बढ़ने लगे। बुढ़िया अपने बेटे के रक्त में उंगली डुबो-डुबोकर तिलक लगाने लगी।

लारी लाल तिलक वालों की पहुंच से आगे निकल गई, बहुत दूर...

मैंने सेठ दाहरजी बजूरिया से पूछा, "अब के कपड़े से जो कण्ट्रोल उठा, उससे तुम्हें क्या लाभ हुआ ?"

वह बोला, "अपने को क्या लाभ हुआ ? अपनी मिल तो मैनेजिंग एजेण्ट्स के पास है। अपन ने तो अब आठ-दस लाख का हेर-फेर किया। मजे में तो एजेण्ट्स रहे।"

"वह कैसे ?" मैंने पूछा।

उसका गुमाश्ता बीच में बोल उठा, "हमें पहले से मालूम था, कण्ट्रोल उठनेवाला है। जिस बात को गांधीजी चाहते हैं, उसको कोई रोक थोड़े ही सकता है ! मैनेजिंग एजेण्ट्स ने माल रोक दिया। दो-तीन मास रोकते रहे। बाजार में कपड़ा नहीं मिलता था। लोग शोर मचाते। गांधीजी ने जब जनता का कष्ट देखा तो उन्होंने कण्ट्रोल उठाने के लिए ज़ोर दिया।

जब कंट्रोल उठा, कपड़ा एकदम दो सौ गुना महंगा हो गया। अकेली हमारी मिल के मैनेजिंग एजेण्ट्स ने कपड़े के व्यापार में पिछले दो मास में ढाई करोड़ रुपया कमा लिया। इतना हमने पिछले दो युद्धों में भी नहीं कमाया था जितना पिछले दो मासों में कमा लिया। अब भले सरकार फिर से कण्ट्रोल कर दे। अपने को क्या परवाह है!"

गुमाश्ते ने घृणा से एक गन्दा इशारा किया और ५५५ का सिगरेट पीने लगा।

मैंने आर्टिस्टनुमा जानवर से पूछा, "और तुम्हें क्या मिला इस धंधे से ?"

वह बोला, "मैं कलाकार था। चित्र बनाता था, वे कला के उत्तम नमूने कि जिन्हें आलोचक सराहते थे और दूसरे कलाकार ईर्ष्या की दृष्टि से देखते थे। सारे संसार में मेरा आदर था। मैं कलाकारों की सभा का सभापति भी रह चुका हूं, लेकिन कला ने मुझे पैसा नहीं दिया, रोटी नहीं दी, कपड़ा नहीं दिया। इतना भी तो नहीं दिया कि दोनों समय खाना खा सकूं अपनी पत्नी का तन ढकने के लिए धोती तक खरीद सकूं, अपने बच्चे को स्कूल भेज सकूं। तुम जानते हो कलाकार भी मनुष्य होता है, उसकी आवश्यकताएं भी दूसरे लोगों की तरह होती हैं।"

"फिर क्या हुआ ?" मैंने पूछा, "आगे बको, यह दार्शनिकता मत बघारो, मैं यह सब जानता हूं।"

वह बोला, "फिर मैंने कला का ख्याल छोड़ दिया और सेठ दाहरजी की मिल में नौकर हो गया। अब मैं साड़ियों के नमूने अजन्ता के फ्रैस्को से नकल करता हूं और उनमें थोड़ी-सी काट-छांट करके रंग भरता रहता हूं। मेरे नमूने बहुत सफल हैं। मिल-मालिक मुझे हर मास बारह सौ रुपया वेतन देते हैं।"

मैंने कहा, "तो तुम अजन्ता बेचते हो, जैसे यह मिल-मालिक गांधीजी को बेचता है !"

आर्टिस्टनुमा जानवर ने एक सुन्दर-सा पाइप सुलगाया और अपने

कन्धे हिलाकर चुप हो गया। लेकिन सेठ को बड़ा क्रोध आया। बोला, "तुम हमारी इन्सल्ट करता है। हम अहमदाबाद का सबसे बड़ा सेठ है।"

मैंने कहा, "मैं अहमदाबाद का सबसे निर्धन आदमी हूं। मुझे ही तुम्हारी इन्सल्ट करने का अधिकार है।"

सेठ ने कहा, "तुम वापस अहमदाबाद चलो, मैं तुम्हें जेल में बन्द करा दूंगा। साला, क्या समझता है, सेठ दाहरजी बजूरिया से सरकार भी···"

मैंने कहा, "···डरती होगी ! मैं वापस अहमदाबाद अवश्य जाऊंगा और तुम मुझे जेल में बन्द करा दोगे और मैं जेल में नंगा नाचूंगा, और राज्य तुमसे डरता रहेगा, और फिर कपड़े का भाव आठ सौ गुना बढ़ जाएगा और मेरी जेल के बाहर लाखों नंगे इन्सान नाचेंगे। उस दिन तुम और तुम्हारी सरकार, और तुम्हारे मैनेजिंग एजेण्ट्स—सब लोग मुझसे डरेंगे, क्योंकि मैं अहमदाबाद का सबसे निर्धन आदमी हूं।"

रिफत ने एक झल्लाहट से कहा, "किस सिड़ी-सौदाई से वास्ता पड़ा है। सफर का मज़ा किरकिरा कर दिया। स्यासत (राजनीति), स्यासत, स्यासत ! जहां देखो, यही बकवास, मेरे तो सुनते-सुनते कान पक गए।"

जमील ने नकहत से कहा, "आओ बैतबाज़ी से जी बहलाएं।"

लड़कियां उछल पड़ीं, "वाह ! वाह !"

बैतबाज़ी में सौन्दर्य और कविता, प्रेम और प्यार की कथाएं जो होती हैं ! क्यों न प्रसन्न होतीं—जैसे मुर्गियों को मुर्गे मिल गए, वहीं सीट पर बैठे-बैठे अपने पंख फुलाने लगीं।

मैंने कहा, "आप लोग बैतबाज़ी शुरू कीजिए मगर···।"

रिफत ने बात काटते हुए कहा, "तुम्हें कौन शामिल करता है, तुम चुप नहीं रह सकते ?"

मैंने कहा, "मैं कहां शामिल हो रहा हूं आप जैसे लोगों की महफिल में। मेरा कहने का मतलब यह है कि बैतबाजी में कोई नई बात होनी चाहिए। जैसे···"

"तोबा, अल्लाह ! आखिर आपका मतलब क्या है ?" नज़हत चिढ़-

कर बोली ।

"मैं यह कहने जा रहा था कि आप लोग बैतबाज़ी बड़े शौक से करें, मैं सुनता रहूंगा, लेकिन अगर पूरी बैतबाज़ी गालिब के शेरों तक ही सीमित रहे तो अच्छा है, क्या ख्याल है आपका ?"

वसीम ने मुस्कराकर कहा, "ख्याल तो बहुत अच्छा है, मगर है मुश्किल बात ।"

"अजी, कुछ मुश्किल नहीं, तुम चलो ।"

नज़हत ने कहा, "मैं शुरू करती हूं । हम तीनों बहिनें एक तरफ, तुम तीनों मर्द एक तरफ ।"

लखनऊ आने का बायस नहीं खुलता यानी,
हविसे सैरो-तमाशा, सो वह कम है हमको ।[1]

जमील ने उत्तर दिया—

वां पहुंचकर जो ग़श आता पैहय हमको,
सदरह आहंग ज़मीं-बोस क़दम है हमको ।[2]

नकहत बोली—

वां उसको हौले-दिल है तो यां मैं हूं शर्मसार,
यानी यह मेरी आह की तासीर से न हो ।[3]

वसीम ने नज़हत की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—

---

१. हम लखनऊ क्यों आए, इसका कारण मालूम नहीं होता ! यदि यह कहा जाए कि सैर-तमाशा की लालसा थी तो यह लालसा हमें नहीं है ।

२. प्रेमिका की गली में पहुंचकर हमारे बार-बार मूर्छित हो जाने का कारण यह है कि इतने बुढ़ापे और निर्बलता के बावजूद हमारे कदम हमें यहां तक ले आए । इस उपकार के कारण हम बार-बार अपने कदमों को चूमने का संकल्प करते हैं और मूर्छित हो जाते हैं ।

३. उन्हें दिल के हौल का रोग है और मैं लज्जित हूं, कहीं यह मेरी आहों के कारण न हो ।

वफ़ादारी बशर्ते उस्तवारी असले ईमां है,
मरे बुतखाना में तो काबा में गाड़ो बरहमन को ।[1]

वे लोग गालिब के शेरों में अपनी-अपनी बातें बयान करने लगे और अपनी काम-सम्बन्धी आकांक्षाओं के सन्देश देने लगे; और मैं ऊबकर लारी से बाहर नज़र दौड़ाने लगा। लारी एक टीले के पास से गुज़र गई। यहां एक छोटा-सा घर था। टीले पर गुलमहर का वृक्ष खड़ा था और घर के बाहर खेतों में एक बैल की लाश पड़ी हुई थी। गिद्ध उसे नोच-नोचकर खा गए थे, और अब उसके चौड़े-चकले हाड़ों पर आवारा कुत्ते, गिद्ध, कव्वे और गीदड़ जमा थे। इस घर में चेलापति रहता था और उसकी पत्नी सुन्दरमा। सुन्दरमा सचमुच बड़ी सुन्दर थी। उसका यौवन गुलमहर के फूलों की तरह लहक रहा था। जब चेलापति ने उसे पहले-पहल देखा, वह अपने खेतों में, अपनी फसल के बीच में खड़ी गोफिया चला रही थी और गा रही थी कि चेलापति का उधर से आना हुआ। उसने सुन्दरमा को देखा और उसके गीत का उत्तर अपने गीत से दिया; और इस तरह चेलापति और सुन्दरमा की भेंट हुई; और फिर वे दोनों एक-दूसरे को गोफिया चलाने की कला सिखाने लगे; और इस तरह उन दोनों में प्रेम का बीज अंकुरित हुआ और यह बीज उनके खेतों में फूटा और उन दोनों ने बड़ी तन्मयता से उसे सींचा, नलाई की, गोड़ी की, उसे पाला, पोसा, परवान चढ़ाया। फिर उनके प्रेम का खलिहान लगा और दोनों गांववाले इकट्ठे हुए; और सुन्दरमा और चेलापति को प्रेम के खलिहान में अपना भाग मिला और उन्हें इस टीले के किनारे पर छोटा-सा घर मिला। ये छोटे-से तीन खेत और एक गुलमहर का वृक्ष जो फूलों से लदा उनके जीवन की प्रसन्नता-भरी

---

१. स्वामिभक्ति ही वास्तविक धर्म है। ब्राह्मण यदि सारी आयु मन्दिर में व्यतीत कर दे और वहीं मर जाए तो उसे काबे में गाड़ना चाहिए, यह उसका अधिकार है।

उमंगों का चित्र था।

चेलापति और सुन्दरमा उस नन्हे-से घर में रहने लगे। उन्होंने अपने प्रेम और परिश्रम से खेतों में बहारों को एकत्रित किया। धरती जो बंजर थी वह पसीने से सींची। जहां धूल उड़ती थी वहां हरियाली ने लहकना शुरू किया। जहां मटियाली भूख थी वहां सुनहली फसलें सरसराने लगीं। बीज धरती की गोदी से उभर आया और सुन्दरता सोने जैसी चमकती हुई फसलों के बीच में खड़ी होकर अपने मचान पर गोफिया चलाने लगी। उसके केश वायु में लहरा रहे थे, उसकी साड़ी का आंचल फहरा रहा था और वह गीत गा रही थी—मां के गीत अपने बच्चे के लिए, धरती का गीत अपने बीज के लिए, बहार का गीत अपनी फसल के लिए। उसे इस हालत में गांव के पटेल ने देखा और उसपर मोहित हो गया। पटेल का भाग शताब्दियों से हर खलिहान में था, हर घर में था, हर शादी-ब्याह में था, हर बच्ची के सतीत्व में था जो उसे पसंद आ जाए। सुन्दरमा उसे पसंद आ गई। क्या हुआ अगर वह किसी दूसरे की ब्याहता थी। वह गांव का पटेल था और प्रेम के खलिहान में उसका भी भाग था, लेकिन सुन्दरमा कैसे मानती? चेलापति यह भाग कैसे देता? पटेल ने सब चालें चलीं। अन्त में जब कोई चाल सफल न हुई तो पटेल ने चेलापति को मरवा देना चाहा, लेकिन चेलापति मरा नहीं। उलटा उसने पटेल के दो गुण्डों का सिर कुचलकर रख दिया। उसपर पटेल चुप हो गया। उस समय उसे यही उचित जान पड़ा।

दिन बीतते गए। बहार अभी अनुभवहीन थी, ठहर न सकी। गांव में अकाल पड़ा और पानी खेतों में न बरसा; और चेलापति के खेतों में फसल बहुत कम हुई, इतनी कम कि पटेल का भाग और जगीरदार का भाग और मालिये का भाग देने के बाद कुछ न बच सकता था। इसलिए चेलापति ने किसीको भी अपने परिश्रम का भाग देने से इन्कार कर दिया। पटेल ने उसे बहुत समझाया; और गांव के दूसरे पंचों ने भी जो उसीकी तरह भूखे थे, और फाके कर रहे थे; लेकिन चेलापति ने एक न मानी। इसपर

पटेल के गुरगों ने उसे कत्ल की धमकी दी।

रात को चेलापति ने सुन्दरमा से परामर्श किया।

सुन्दरमा ने कहा, "मान जाओ, मेरी गोद में अगली बहार तक तुम्हारा बच्चा खेलनेवाला है, हम फिर लड़ेंगे।"

चेलापति ने कहा, "उसी बच्चे के लिए तो यह सब कुछ कर रहा हूं।"

सुन्दरमा ने कहा, "तो अब यह सब कुछ कैसे होगा ? गांव में हमारा कोई साथी नहीं है। वे लोग सचमुच हमें मार डालेंगे।"

चेलापति ने कहा, "तुम डरती हो ?"

वह बोली, "नहीं, मैं तुम्हारे लिए डरती हूं।"

चेलापति बोला, "मैं मख़दूम के पास जाता हूं।"

"मख़दूम कौन है ?" सुन्दरमा ने पूछा।

चेलापति की आंखें चमकने लगीं और वह कहने लगा, "वह सांवला-सा दुबला-पतला नौजवान है। वह गांव-गांव घूमकर किसानों को इकट्ठा करता है और उन्हें उनके अधिकार और उनके कर्तव्य बताता है। मख़दूम कल साथवाले गांव में था और किसानों को जत्थाबन्दी के ढंग बता रहा था। मैं आज उसके पास जाता हूं और उसे अपने गांव लाता हूं।"

वह चुपके से घर से बाहर निकला। सुन्दरमा के गोल चेहरे को अपनी उंगलियों से छूकर बोला, "तू डरती तो नहीं है ?"

सुन्दरमा ने आधे चांद की ओर व्याकुल दृष्टि से देखा, बोली—"संभलकर जाना। न जाने दुश्मन घात में हों।"

दुश्मन सचमुच घात में था। सुबह सवेरे जब चेलापति मख़दूम को लेकर लौटा तो घर का दरवाजा खुला था, और उसके घर के बर्तन तोड़ डाले गए थे, और उसके बैल बाहर खेतों में मरे पड़े थे, और मचान के नीचे उसकी सुन्दरमा दम तोड़ रही थी।

"सुन्दरमा ! सुन्दरमा !!" चेलापति चिल्लाया।

सुन्दरमा ने घायल नजरों से अपने पति की ओर देखा, उसके हाथ में

फसल का एक नन्हा-सा पौधा था। बोली, "तुम आ गए, तुम बच गए। मगर मैं नहीं बच सकूंगी, क्योंकि मैं अकेली थी और वे पचास आदमी थे।"

"सुन्दरमा, सुन्दरमा!" चेलापति ने समुद्र की तह में बहने वाली लहरों की तरह धीमे-धीमे कहा।

"मैं अकेली थी और वे पचास आदमी थे, और उन्होंने मेरी धरती का बीज नष्ट कर दिया।"

वह मर गई और फसल का नन्हा-सा पौधा उसके हाथ से सरक गया और अनाज धरती पर बिखर गया।

चेलापति ने मखदूम की ओर देखा, मखदूम ने सुन्दरमा की ओर, फिर उसने अनाज के दाने अपनी मुट्ठी में उठा लिए और कहा, "आओ, चेलापति यहां से चलें, गांव वाले इन दोनों का इन्तज़ार कर रहे हैं।"

चेलापति मखदूम के साथ चला गया। वह फिर अपने घर नहीं लौटा। उस छोटे-से नन्हे घर का दरवाज़ा खुला है और उसके सारे बरतन टूटे पड़े हैं और उसके खेत बंजर और वीरान हैं और बैल की लाश को गिद्ध और गीदड़ खा रहे हैं।

चेलापति और सुन्दरमा का संसार उजड़ चुका है। केवल टीले के पेड़ पर गुलमहर के फूल डाल-डाल पर खिले हुए हैं। घर उजड़ गया है। खेत वीरान हो गया है। मचान टूट गया है। सुन्दरमा मर गई है। चेलापति चला गया है। लेकिन यह गुलमहर के सुर्ख़-सुर्ख़ फूल अभी तक निराश नहीं हुए। फूल कभी निराश नहीं होते। वे सदैव बहार की प्रतीक्षा करते हैं।

लारी बहुत दूर आगे निकल गई। टीला बहुत दूर पीछे रह गया। वसीम कह रहा था :

दिल में ज़ौके-वस्लो-यादे-यार तक बाक़ी नहीं।
आग इस घर को लगी ऐसी कि जो था जल गया॥[1]

---

१. दिल की बर्बादी इससे अधिक क्या होगी कि मित्र से मिलने की उत्सुकता और उसकी याद तक बाकी नहीं रही।

नकहत बोली—

अहबाब चारासाज़िये वहशत न कर सके।
ज़िदां में भी ख़याले-बयाबां नवर्द था ॥[1]

नईम बोला—

एक-एक क़तरे का मुझे देना पड़ा हिसाब।
ख़ूने जिगर वदीयते मिज़गाने यार था ॥[2]

जमील बड़ी शान से बोला—

आज वां तेग़ो-कफ़न बांधे हुए जाता हूं मैं,
उज़र मेरे क़त्ल करने में वो अब लाएंगे क्या ?[3]

मैंने कहा, जब बात यहां तक बढ़ गई है तो यह कहने में क्या बुराई है कि—

आईना देख अपना-सा मुंह लेके रह गए।
साहब को दिल न देने पे कितना ग़रूर था ॥[4]

नज़हत ने झल्लाकर कहा, "आपको इस बैतबाज़ी में किसने शामिल किया है ? आप चुप रहिए।"

मैंने कहा, "मैं चुप हुआ जाता हूं क्योंकि सामने एलोरा की गुफाएं नज़र आ रही हैं।"

एलोरा की गुफाएं !

---

१. प्रेम के पागलपन का इलाज किसीसे न हो सका। कैदखाने में भी मेरी कल्पना बयाबानों की सैर कर रही थी और मेरे पागलपन का प्रमाण उपस्थित करती थी।

२. मुझे दिल के खून का हरेक कतरा बहाना पड़ा। कारण, दिल का खून मित्र की पलकों की एक अमानत था और उस अमानत को अवश्य देना था।

३. आज मैं अपने साथ तलवार भी ले जा रहा हूं और कफन भी, अब भला उन्हें मुझे कत्ल करने में क्या संकोच होगा ?

४. उन्हें किसको दिल न देने पर बहुत घमंड था क्योंकि वह किसीको उसके योग्य न समझते थे लेकिन जब अपनी सूरत शीशे में देखी तो मोहित हो गए (अपने प्रतिबिम्ब को एक और सुन्दरी समझ लिया)।

एलोरा की गुफाएं देखने में मैं सबसे घाटे में रहा। पुलिस-इन्सपैक्टर और तहसीलदार साहब के लिए यहां भुने हुए मुर्ग और रोगनी रोटियों और दो सुन्दर लड़कियों का प्रबन्ध किया गया था। नकहत, रिफत और नज़हत, जमील, वसीम और नईम के साथ गुफाओं में घूमने के मज़े लेती रहीं। यहां अन्धकार भी था और एकांत भी और आध-पौन घंटा के लिए अपने साथियों से अलग भी हुआ जा सकता था और बाद में यह कहकर "अरे भाई, हम तो ऐसे भूलभुलइयों में पड़ गए" पीछा भी छुड़ाया जा सकता था, अर्थात् एलोरा की गुफाएं बहुत दिलचस्प रहीं लेकिन मैं बहुत घाटे में रहा। डाक-बंगले से भूखा चला था, यहां पर भी किसीने मेरे लिए मुर्ग और रोगनी रोटियों का प्रबन्ध नहीं किया। जो सुन्दर लड़कियां थीं वे दूसरों को मिल चुकी थीं। मेरे भाग में एक गाइड आया और एक उन तीनों सुन्दर बहिनों का भाई।

मैंने गाइड से पूछा, "क्या मैं तुम्हारी सहायता के बिना ये गुफाएं नहीं देख सकता ?"

वह बोला, "आप देख सकते हैं, समझ नहीं सकते।"

मैंने रिफत, नकहत और नज़हत के भाई से कहा, "अब तुम भी इन गुफाओं में अपनी बहिनों को न देख सकते हो न समझ सकते हो।"

वह बोला, "क्या मतलब है आपका ?"

मैंने कहा, "तीन सुन्दर बहिनों का भाई होना तुम्हारे लिए क़यामत है। तीनों तुमसे उम्र में बड़ी हैं। आज तक उन्होंने तुम पर हकूमत की है, तुम्हें अपने प्रेम के लिए साधन बनाया है। जब तुम बड़े हो जाओगे और इनकी शादी हो जाएगी तो तुम भी किसी दफ्तर में क्लर्क बनकर मारे-मारे फिरोगे। पहले अपनी बहिनों के नाश्तेदान, पानदान और छतरियां उठाते फिरते थे फिर अपनी बीवी का साज़ो-सामान लादे फिरोगे। जीवन-भर हीनता-भाव में ग्रस्त रहोगे और इसी रोग में ग्रस्त रहकर मर जाओगे। मुझे तुमपर दया आती है। तुम्हारा नाम क्या है ?"

"नादिर !"

"नादिर भैया ! मेरी बात मानो, कूच का हुक्म दे दो। यह साज़ोसामान यहीं छोड़ दो और वापस लौट जाओ। तुम्हारी बहिनों को स्वयं तुम्हारी बहिनों के प्रेमी टहला-टहलाकर लाते फिरेंगे । तुम व्यर्थ क्यों कष्ट में पड़ते हो ?"

नादिर ने कहा, "आप बहुत ज़बान-दराज़ होते जा रहे हैं, हालांकि आपने अभी-अभी हमसे माफ़ी मांगी थी। लेकिन फिर भी आप वैसे के वैसे ही रहे। अब मैं आपकी माता जी की शान में गुस्ताखी कर बैठूंगा।"

गाइड ने कहा, "देखिए, यह राज-नर्तकी की प्रतिमा है।"

सुडौल बांहें, ज्वार-भाटा बनी छातियां, झुकी-झुकी कमर और फैले-फैले कूल्हे, और शरीर के हर अंग में विकलता, स्थायी नृत्य ! एलोरा की गुफाओं में कोई देवी ऐसी न थी जो सुन्दर न थी। कोई देवता ऐसा न था जो हृष्ट-पुष्ट न था। हां, सब ही देवता थे, और सब ही देवियां। यहां द्रविड़ सभ्यता के देवता थे, फिर ब्राह्मणों के देवता, फिर बुद्ध-मत के उपासक, फिर जैन-धर्म के नामलेवा। सांचे में ढले हुए शरीर, मरमर से भी अधिक सुन्दर मूर्तियां। राम और रावण के युद्ध। महाभारत के युद्ध-क्षेत्र। बुद्ध का अमर ज्ञान और जैनियों का शाश्वत प्रकाश। भारत की चार हज़ार वर्षों की पुरानी सभ्यता और संस्कृति का समस्त उत्थान और पतन इन पत्थर की मूर्तियों में अङ्कित था। इन पत्थरों में हम उस सभ्यता की महानता देख सकते थे, उसकी तंगदिली, उसकी संकीर्णता, उसकी उदारता, उसके सामूहिक भेद-भाव, उसकी गिरावट। उस संस्कृति का कोई कोना ऐसा न था जिसे कलाकारों ने हमारे लिए सुरक्षित न कर दिया था—केवल उसे पढ़ने के लिए आंखें चाहिएं; अन्धविश्वासी आंखें नहीं, धार्मिक असहिष्णुता की दृष्टि नहीं, समझने-बूझने वाली दृष्टि। वह दृष्टि जो भारत का दिल समझती है, उसकी महानता समझती है, उसकी दुर्बलता पहचानती है। एलोरा में चित्र के दोनों पक्ष विद्यमान हैं।

एक बहुत बड़े मन्दिर में स्त्री और पुरुष के प्रेम की सारी अवस्थाएं और परिस्थितियां अङ्कित थीं। यहां जब मैंने एक पुरुष के बुत को देखा जो

एक स्त्री को चूम रहा था तो मैं स्तंभित रह गया ।

गाइड बोला, "आप रुक क्यों गए ?"

मैंने कहा, "यह अश्लीलता है, जीवित नग्न अश्लीलता !"

गाइड बोला, "आप आगे तो बढ़िए ।"

आगे बढ़ा तो हर क़दम पर कोकशास्त्र खुला पाया। इससे अच्छे और सुन्दर दृश्य कहीं न पाए गए होंगे ।

मैंने गाइड से पूछा, "क्या एलोरा पर कोई सैंसर नहीं है ?"

गाइड ने कहा, "यह कोई प्रकृति के विरुद्ध बात तो नहीं है। मैंने प्रायः देखा है कि कई जोड़े यहां आकर इन बुतों के देखने के बाद एक-दूसरे को चूमने लगते हैं।"

मैंने कहा, "प्यारे नादिर ! तुम अपनी आंखों पर सैंसर बिठा लो, अन्यथा मुझे भय है कि······।"

नादिर मुझे गाली देने लगा । मैं आगे बढ़ गया जहां एक देवी और देवता नग्न नृत्य में मग्न थे ।

नग्न नृत्य !

नवाब आसमानजाह बहादुर यारजंग बहादुर बीसवीं शताब्दी में भी एक अन्तःपुर रखते थे । बेगमों के अतिरिक्त कनीज़ें, लौंडियां, बांदियां मामाएं, एक लम्बा-चौड़ा परिवार था, जो सैकड़ों की गिनती में आता था। वे बड़े भारी जागीरदार थे, इसलिए बड़ा भारी अन्तःपुर भी रखते थे । अन्तःपुर के दरोगाजी पहले बाकायदा पुरुष थे लेकिन स्थायी बेकारी से उन्होंने यही उचित समझा कि थोड़ी-सी 'कांट-छांट' स्वीकार कर ली जाए और हिजड़ों में शामिल होकर अपने और अपने परिवार के लिए दाना-पानी जुटाया जाए । नवाब आसमानजाह बहादुर यारजंग ने भी उन्हें डाक्टरी निरीक्षण के बाद ही नौकर रखा था क्योंकि अन्तःपुर का नियम ही यही है कि औरतों के इस भरे बाजार में सांड केवल एक हो, अन्यथा अन्तःपुर की पवित्रता पर चोट पड़ती है । नवाब साहब कोई तगड़े जवांमर्द नहीं थे ।

शताब्दियों के स्थायी भोग-विलास ने उनके शरीर और मस्तिष्क में बहुत सी विशेषताएं उत्पन्न कर दी थीं अर्थात् पुरुष की आत्मा लगभग लुप्त हो चुकी थी, फिर भी वह कुश्तों से और बिजली, पानी, भाप की चिकित्सा द्वारा इतने बड़े अन्तःपुर का भ्रम बनाए हुए थे।

नवाब आसमानजाह बहादुर यारजंग बहादुर की आयु पैंतीस वर्ष से अधिक न होगी, लेकिन देखने में पचास से कम मालूम न होते थे। एक तो वह दिन को सोते थे और रात को जागते थे। फिर बचपन से उन्होंने कभी पानी न पिया था। जब प्यास लगी, पीने के लिए फ्रैंच वाइन मिली। जब भूख लगी, भारी खाना ही मिला। साधारण भोजन कभी न मिला जब औरत की आवश्यकता हुई, बदकार औरत ही मिली। इस छोटे-से जीवन में उन्होंने विलासी जीवन के सारे रोग प्राप्त कर लिए थे; और इतना बड़ा अन्तःपुर स्थापित कर लिया था। इस अन्तःपुर में बहुत कम औरतें ब्याह कर रखी गई थीं। बाकी सबकी सब 'दाखिल' की गई थीं। कुछएक आवारा-सी औरतें थीं, कुछ रंडियों की संतान थीं, जिन्होंने एकमुश्त रकम के बदले सौदे कर लिए थे। कुछ औरतें भगाकर लाई गई थीं; लेकिन एक बहुत बड़ी संख्या ऐसी औरतों की थी जो प्रजा के सतीत्व के लगान-स्वरूप आई थीं। प्रजा को भूमि पर लगान देना पड़ता है, उसे जंगल से लकड़ियां काटने के लिए टैक्स देना पड़ता है, उसे घर बनाने के लिए टैक्स देना पड़ता है, उसे फसल को सुरक्षित रखने के लिए फसल का एक भाग देना पड़ता है। इसी तरह उसे 'सतीत्व टैक्स' भी देना पड़ता है कि उसके बिना गांव वालों की घरेलू प्रसन्नता सुरक्षित नहीं रह सकती। जब फसल पकती है तो जागीरदार अपना भाग लेता है। इसी तरह जब औरतें जवान हो जाती हैं तो जागीरदार अपना भाग ले लेता है। लगान वह अपने खज़ाने में दाखिल कर लेता है और औरतें अपने अन्तःपुर में। यह जागीरदारराना सामाजिक जीवन का एक सीधा-सादा नियम है जिसमें होंठ हिलाने की बहुत कम गुंजायश है। नवाब आसमानजाह बहादुर यारजंग ने कभी इसमें कोई गुंजायश न रहने दी थी।

'नवाब' भी इसी सिलसिले में, सतीत्व टैक्स के सम्बन्धमें अंतःपुर

में लाई गई थी। 'नवाब' मिरज़ा की बेटी थी। मिरज़ा मुसलमान था और इस दृष्टि से उस इलाके में बादशाह समझा जाता था। मिरज़ा के वस्त्र फटे हुए होते थे। उसकी पत्नी के पास कपड़ों का एक ही जोड़ा था; और उसके घर में एक ही कमरा था जिसे वह एक ही समय में दीवानेखास और गुसलखाने के रूप में इस्तेमाल करता था। यों तो वह इस इलाके में बादशाह था क्योंकि मुसलमान जागीरदार की प्रजा था और स्वयं किसान था। कौन जाने किसी समय उसके पूर्वज क्या कुछ थे! इस समय तो वह बहुत ही ऋणी और दरिद्र था। अन्य हिन्दू किसानों, और मुज़ारों, और खेत के मज़दूरों से वह ज़रा अलग-अलग रहता था, क्योंकि मिरज़ा बादशाह था; और बादशाह जनता से ज़रा अलग ही रहा करते हैं। यह अलग बात है कि मालिया, लगान, बटाई और जागीरदारी नियमों के सारे टैक्स उसे भरने होते थे दूसरे किसानों की तरह। फिर भी उसकी हैसियत अलग थी। नवाब उसकी इकलौती बेटी थी। दूर-दूर तक उसकी सुन्दरता की चर्चा थी। मिरजा उसे पास के गांव के मुसलमान पटेल के लड़के से ब्याहना चाहता था और वह निकाह हो भी जाता क्योंकि उस पटेल के लड़के को भी यह नाता बहुत पसन्द था लेकिन बुरा हो 'सतीत्व' टैक्स' का कि नवाब पर आसमानजाह बहादुर यारजंग की तबीयत आ गई। यों तो दूसरे इलाकों के यारजंगों की कोशिशें बराबर जारी थीं और वे कई बार नवाब को अगवा करने के मनसूबे बांधे जा चुके थे, लेकिन वह तो यों समझिए कि भगवान को मिरज़ा की इज्ज़त रखनी थी कि मिरजा की इकलौती लाडली अपने इलाके के नवाब के अन्तःपुर में दाखिल की गई। मिरज़ा यही समझता था कि नवाब ने उसकी बेटी से अकद किया है, हालांकि वास्तविकता यह थी कि अन्तःपुर में उसकी लड़की की हैसियत बांदियों से कुछ अधिक न थी। पहले दिन ही उसे नंगा नचवाया गया, यह बात भी मिरजा को कभी मालूम न हुई और वह इसी बात पर गर्व करता रहा कि आखिर एक बादशाह की बेटी बेगम बनकर एक बादशाह के अन्तःपुर में दाखिल हुई है। यदि मिरज़ा वह रात का दृश्य देख पाता

जब उसकी कंवारी लड़की को नग्न करके महफ़िल में अन्य औरतों के साथ नचवाया गया था, तो न जाने अपनी बादशाहत के सम्बन्ध में उसके विचार कहां तक बदल जाते ! हां इसमें कोई सन्देह नहीं कि नवाब के विचार अवश्य बदल गए। पहले तो उसने वस्त्र उतारने में संकोच किया फिर जब उसके वस्त्र नोच-नोचकर तार-तार कर डाले गए, और उसके मुंह में मदिरा उंडेल दी गई, और उसे पन्द्रह-बीस नंगी औरतों के झुरमट में ले लिया गया तो उसे कुछ स्मरण न रहा कि वह कहां है, और क्या कर रही है, या उसके साथ क्या कुछ हो रहा है। नवाब आसमानजाह केवल कुछ घंटे उसके पास रहे और उसके बाद उसे सदैव के लिए भूल गए, क्योंकि अन्तः-पुर में हज़ारों सुन्दर कार्य होते हैं, उनमें एक कार्य यह भी था कि जिस प्रकार के पत्थर के बुत एलोरा की गुफाओं में सुरक्षित थे और जो स्त्री-पुरुष की काम-शास्त्र में वृद्धि का साधन बन सकते थे, वास्तविक जीवन में उनका चर्बा उतारा जाए। इस सम्बन्ध में नवाब को एक बार पुनः कष्ट दिया गया और एलोरा की उन गुफाओं का हू-बहू दृश्य नवाब आसमान बहादुर यारजंग के अन्तःपुर में खिंच गया। नवाब आसमानजाह एक-एक दृश्य को देखते आते थे और उसे एलोरा के खिंचे हुए फोटो से मिलाते जाते थे। कहीं कोई त्रुटि देखते तो उसे वहीं ठीक कर देते। जिस कुंज में नवाब खड़ी थी वहां भी उन्हें दो-तीन त्रुटियां दिखाई दीं जिन्हें ठीक करने के लिए जब वह आगे बढ़े तो नवाब ने उनका मुंह नोच लिया और ज़ोर-ज़ोर से चीखने-चिल्लाने लगी। नवाब आसमानजाह के चेहरे और गरदन पर कई रगड़ें आईं लेकिन जिसे भगवान रखे उसे कौन चक्खे, नवाब बच गए और नवाब बेचारी की वह ठुकाई हुई कि कई दिन तक अन्धेरी कोठरी में मूर्च्छित पड़ी रही। जब अच्छी हुई तो उसपर आठ-दस साहब छोड़ दिए गए, जैसे भूखे कुत्ते शिकार पर छोड़ दिए जाते हैं। उसके बाद नवाब ने दो बार अन्तःपुर से भागने का यत्न किया और असफल रही; और हर बार कोड़ों से पिटी। आखिर जब वह अन्तःपुर से भाग निकलने में सफल हो गई तो पिस्तौल की गोली उसके बाएं बाज़ू को चीरकर पार हो गई।

कई दिन वह खेतों में छिपती मारी-मारी फिरती रही। उसके बाप ने उसे आश्रय देने से इन्कार कर दिया और गांव के किसी अन्य व्यक्ति में यह साहस न था। वह मुसलमान पटेल का लड़का अब साफ़ कन्नी काट गया। इसी बीच में उसके बाज़ू का घाव बढ़ गया और गलने लगा। आख़िर जब किसानों के जत्थे बनाने वालों ने उसकी रामकहानी सुनी तो उसकी सहायता की। अस्पताल में उसका बाज़ू काट डाला गया और जब वह अच्छी हो गई तो उन्हीं में शामिल हो गई। अब वह पर्दा न करती थी, क्योंकि विवाह के पहले दिन ही उसे नंगा नाचना पड़ा था; और अब उसे अपनी बादशाहत की वास्तविकता भी मालूम हो गई थी। अब वह जत्थे वालों के साथ गांव-गांव में घूमती थी पुरुषों की तरह, और किसानों को संगठित करती थी, और उन्हें बादशाहत की भयानक प्रवञ्चना से सूचित करती थी और लोग उसकी कटी हुई भुजा को देखते, उसके लुटे हुए सतीत्व को देखते, उसकी घायल आंखों की घृणा को देखते और समझते कि हज़ारों वर्ष के बाद उनके जीवन में वह भयानक घृणा, वह सच्ची घृणा आ रही है जो उन्हें पहली बार अपने भाग्य के विरुद्ध उकसाने पर बाध्य कर रही है और दक्षिण के खेतों में एक नई क्रान्ति का श्रीगणेश कर रही है। सब किसान नवाब को बड़ी बहिन कहते थे हालांकि वह कठिनता से सत्रह वर्ष की लड़की होगी, लेकिन पिछले दो वर्षों ही में उसने तीन-चार हज़ार साल के अर्थ-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, और मानसिक दृष्टि से उसकी गणना बड़ी-बूढ़ियों में होने लगी थी। लोग कहते हैं कि अपने दौरे के सम्बन्ध में वह एक बार एलोरा भी आई थी और उसके बुतों को देखकर प्रसन्न होती रही, और रोती भी रही; और जिन लोगों ने एलोरा को देखा है वे उसके प्रसन्न होने और रोने को समझ सकते हैं। जब मैं नग्न-नृत्य के दृश्य देख रहा था तो बाहर से लारी के भोंपू की आवाज़ सुनाई दी, और मैं अनमन-सा बाहर चला आया। यहां पुलिस इंसपैक्टर और तहसीलदार साहब निपट-निपटाकर लारी में बैठ गए थे। उनके तुरन्त बाद ही मैं बैठ गया, परन्तु वे सुन्दर जोड़े ज़रा देर में निकले। उन

लोगों के चेहरे लाल हो रहे थे और बाल परेशान थे, और वे स्वयं ही झेंपे जा रहे थे। जब वे लोग लारी में बैठ चुके तो मैंने कहा, "नजहत बहिन ! मैं आपको एक बादशाह की बेटी की कहानी सुनाना चाहता हूं, जो एलोरा की गुफाओं को देखकर हंसी भी और रोई भी। आप पूछिए हंसी क्यों, और रोई क्यों ?"

नज़हत ने कहा, "हम नहीं पूछते," और फिर ड्राइवर से बोली, "लारी चलाओ जी, जल्दी से।"

जब लारी चलने लगी तो मैंने बकना शुरू किया, "सुनिए नज़हत साहिबा ! एक थी बादशाह की बेटी···"

वह बोली, "भाड़ में जाए तुम्हारी शाहज़ादी, और चूल्हे में जाओ तुम !"

मैंने कहा, "आप लोग अजन्ता और एलोरा देखने आए हैं और इनके बारे में किसी प्रकार की ऐतिहासिक बातें भी जानना नहीं चाहते ?"

नज़हत ने कहा, "हम तो सैर-तमाशे के लिए आए हैं, तुम्हारी तरह मग़ज़पच्ची करने नहीं आए।"

मैंने कहा, "मिस नज़हत, आप जिस वर्ग से सम्बन्ध रखती हैं वहां रुपये के सिवा और किसी चीज में दिलचस्पी नहीं ली जाती। आपके यहां हर चीज़ का महत्त्व छिछला छिछोरा है। आपके लिए साम्राज्य और लोकराज्य बराबर है। हिटलर और स्टालिन में आपके लिए कोइ फ़र्क नहीं है। आपके वर्ग ने जीवन के हर मोड़ पर मानव-इतिहास से विश्वासघात किया है। फ्रांस की क्रान्ति से लेकर आज तक चलते आइए, कहीं भी आप लोग खड़े रह सके ? आपने कुछ टकों के लिए सदैव जनता का साथ छोड़ दिया। इस समय भी वही कर रहे हो तुम लोग, मैं कहता हूं···"

नईम ने अपना घूंसा बिलकुल मेरी नाक के सामने लाकर कहा, "बौक्सिग जानता हूं। ज्यादा बकवास की तो दो ही घूंसों में लुढ़कते नज़र आओगे।"

मैंने घृणा से अपना मुंह फेर लिया और ज़ोर से लारी के बाहर थूक

दिया। पुलिस इंसपैक्टर और तहसीलदार साहब ने क्रोध से मेरी ओर देखा। मैंने दुबारा थूक दिया। उन लोगों ने अपनी नज़रें सीधी सामने सड़क पर गाड़ दीं और लारी के अन्दर फिर बैतबाज़ी शुरू हो गई। जमील ने कहा :

क्यों जल गया न तावे रुखे यार देख कर।
जलता हूं अपनी ताक़ते दीदार देख कर॥[1]

नज़हत बोली :

रुखे निगार से है सोज़े जावदानिये शमाँ।
हुई है आतिशे गुल आबे ज़न्दगानिये शमाँ॥[2]

नईम ने कहा :

आशक़ी सब्र तलब और तमन्ना बेताब।
दिल का क्या रंग करूं खूने जिगर होने तक॥[3]

वसीम ने कहा :

दिल दिया जान के क्यों उसको वफ़ादार असद।
गलती की कि जो काफ़िर को मुसलमां समझा॥[4]

रिफ़त ने न जाने क्या उत्तर दिया, लेकिन मेरा दिल क़ाफ़िर और मुसलमान की उलझनों में पड़ गया। न्याज़ हैदर एक मुसलमान था और अजन्ता के गांव में एक क़ाफ़िर की बेटी से प्रेम करता था। न्याज़ हैदर अजन्ता के कस्बे के डाक-बंगले में आकर ठहरा था। वह नियमानुसार

---

१. प्रेमी के चेहरे की कांति देखकर मुझे जलकर राख हो जाना चाहिए था लेकिन मेरी देखने की शक्ति का बुरा हो कि यह गर्व मुझे प्राप्त न हुआ!
२. प्रेमी के मुख की सुन्दरता देखकर दीपक को ईर्ष्या होती है और वह सदा के लिए जलता है अर्थात् उस फूल के सौंदर्य की अग्नि दीपक के लिए अमृत बनी हुई है।
३. प्रेम में शीघ्र सफलता नहीं होती; वह सब्र चाहता है, और अभिलाषा अधीर है। मृत्यु तक दिल को किस तरह संभालूं, क्योंकि सफलता तो मृत्यु के बाद होगी।
४. ऐ असद (गालिब का पहला उपनाम), उसे वफ़ादार समझ क्यों अपना दिल दे दिया। कितनी भूल हुई कि एक नास्तिक को आस्तिक समझा।

शराब के दो पैग पीकर सैर करने निकला। देर तक बन्ध से गिरते हुए पानी को देखता रहा, फिर अकेला ही पगडण्डी पर हो लिया जो सामने के खेतों से आती थी। रास्ते में काफिर की बेटी मिल गई जिसने उसका दिल हर लिया। वह डाक-बंगले के चौकीदार की बेटी थी और बड़ी बांकी और जवान थी, और न्याज़ हैदर के ख्याल में खरीदी भी जा सकती थी, लेकिन जब उसे पता चला कि वह खरीदी नहीं जा सकती तो उसे वही बड़ी हैरानी और घबराहट हुई। वह अजन्ता के गांव में दो दिन ठहरने के लिए आया था लेकिन वह वहां पांच-छह दिन ठहरा। वह एक चाय की कम्पनी का एजेण्ट था। पहले दो दिनों में उसने कस्बे के दुकानदारों को चाय के बंडल बांट दिए, अब उसे वहां से चला जाना चाहिए था लेकिन क़ाफिर की पुत्री की मीठी नज़रों ने उसे जाने न दिया, और वह तीन दिन और उसी डाक-बंगले में पड़ा प्रेम की चटकीली बातों से प्रसन्न होता रहा। वह क़ाफ़िर की पुत्री उसकी बात नहीं समझ सकती थी लेकिन उसका बाप समझ सकता था इसलिए उसने शीघ्र ही न्याज़ हैदर को उसकी गलती बता दी—वह एक ब्राह्मण था। उसकी बेटी एक ब्राह्मण की बेटी थी, और उसका नाम शान्ता था, और चाय बेचनेवाले एजेण्ट का नाम न्याज हैदर था और वह मुसलमान था।

न्याज़ हैदर के दिल में शान्ता कुछ इस प्रकार खुबने लगी जैसे नरम धरती में पौदा अपनी जड़ें मज़बूत करता है, और फिर कली की तरह फूट निकलता है। ऐसा ही हरा-भरा प्रेम था न्याज़ हैदर का। शान्ता उसकी भाषा न समझते हुए भी उसकी बोली समझने लगी। वह बोली जो धर्म और जाति से ऊंची होती है। वह प्रतिदिन रात के समय उसके लिए खाना लाती। दो रोटियां होती सब्ज बाजरे की और एक भुना हुआ बैंगन और बस। न्याज़ हैदर ने इससे अच्छा खाना किसी डाक-बंगले में न खाया था। वह हर रोज़ उसी खाने के लिए कहता और शान्ता भी रात को उसके लिए वही खाना लाती और उसकी मेज़ पर रखकर आंखें झुकाए चली जाती।

न्याज हैदर पांच दिन डाक-बंगले में रहा, आखिर चला गया क्योंकि

वह चाय की कम्पनी का एजेण्ट था और कम्पनी काम देखती है, लाभ देखती है, प्रेम नहीं देखती। थोड़े समय के बाद न्याज़ हैदर फिर उसी गांव में आया और इस बार सात दिन रहा। अब उसने टूटी-फूटी मराठी भी सीख ली थी, और शान्ता से लोकगीतों का अर्थ पूछा करता था। अब के बैंगनों का मौसम न था, इसलिए वह सब्ज़ रोटियों के साथ मसाले में भुने हुए आलू खाता और ठंडा पानी पीकर शान्ता के बनाए हुए खाने की प्रशंसा करता और शान्ता उसी ओर मीठी कृपा-दृष्टि से देखती। अब के चौकीदार का स्वर भी अधिक कोमल था, लेकिन आखिर था ब्राह्मण ही, इसलिए आठवें दिन न्याज़ हैदर फिर वहां से निष्फल लौट आया।

दो-तीन मास तक न्याज़ हैदर इधर-उधर दूसरे गांवों में फिरता रहा, आखिर वह फिर अजन्ता के गांवों में पहुंचा। वही डाक-बंगला। वही चौकीदार अपना हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। उसे देखकर चौकीदार ने उसकी बहुत आवभगत की लेकिन शान्ता कहीं नज़र न आई। न्याज़ हैदर ने पूछा तो चौकीदार ने बताया कि वह कल आएगी। न्याज़ हैदर रात-भर जागता रहा। दूसरे दिन वह दिन-भर उसकी प्रतीक्षा करता रहा। रात को वह आई। थाली में उसने बाजरे की दो सब्ज़ रोटियां रखी थीं; मक्खन में रची हुई रोटियां और कुछ मिरचों का अचार था और भुना हुआ बैंगन। उसने चुपके से न्याज़ हैदर के सामने खाना रख दिया

न्याज़ हैदर ने खाना अलग रख दिया, "कहां थी तुम, मैं कल रात से सोया नहीं।" उसकी आवाज़ में क्रोध भरा हुआ था।

शान्ता सिर झुकाकर रोने लगी। धीरे-धीरे उसके आंसू मेज़ पर गिरते गए।

न्याज़ हैदर ने एकाएक उसकी रङ्गीन साड़ी की ओर देखा, उसके लाल टीके की ओर देखा जो उसके माथे पर चमक रहा था और उसका दिल भर आया; और वह भी हौले-हौले रोने लगा। जैसे अब उस संसार में उन दोनों का कुछ न रहा हो। जैसे आकाश और धरती जलकर राख हो गए हों, और कहीं पानी की एक बूंद बाकी न हो।

न्याज़ हैदर ने पूछा, "यह कब हुआ ?"

शान्ता ने कहा, "पिछले महीने, चांद की दसवीं को।"

पिछले महीने चांद की दसवीं को न्याज़ हैदर नाचनील के कस्बे में था। उस रात उसे नींद नहीं आई थी, क्योंकि पड़ोस में ब्याह था और औरतें रात-भर गीत गाती रही थीं और सुनते-सुनते उसके दिल का नासूर रिसने लगा था और कहीं प्रातःकाल उसकी आंख लगी थी कि उसने सुना जैसे शान्ता उसे पुकार रही है—जल्दी आ जाओ, जल्दी आ जाओ, ऐसे में तुम कहां हो ? और वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। कोई भी तो न था।

न्याज़ हैदर ने कहा, "ग़लती मेरी है, तूने मुझे बुलाया था, मैं ही न आ सका।"

शान्ता ने कहा, "मैंने अपने दिल में हज़ार वार तुम्हें बुलाया होगा। अब भी बुलाती हूं। जीवन-भर तुम्हें बुलाती रहूंगी। चाहे तुम मुसलमान हो और मैं ब्राह्मण हूं, और बापू कहते हैं कि तुम्हारा-मेरा मेल कभी नहीं हो सकता।"

न्याज़ हैदर देर तक चुप रहा, बहुत देर तक चुप रहा। आठ नौ वर्षों से वह अपने और शान्ता के बीच में एक पुल बनाता चला आया था लेकिन यह पुल कभी पूरा न हो सका क्योंकि उसकी नींव ग़लत थी। आठ नौ वर्षों से वह शान्ता के पिता के पास अपना सलाम भेजने की कोशिश करता और आठ-नौ साल तक शान्ता का बाप उसके सामने अपना हिन्दू-धर्म भेजने में जुटा रहा और यह सौदा किसी तरह तै न हो सका और यह पुल धर्म की दीवारों पर न बन सका। एकाएक उसकी सब नीवें ढह गईं और न्याज हैदर चीखें मार-मारकर रोने लगा और शान्ता ने अपने आंचल से आंसू पोंछे।

न्याज़ हैदर ने कहा, "अब मैं जा रहा हूं, तुम्हें फिर कभी न मिलूंगा।"

शान्ता घबराहट में बोली, "अब तुम क्या करोगे ?"

न्याज़ हैदर ने कहा, "चाय नहीं बेचूंगा अब, अब मैं नये-नये गीत लिखूंगा। शान्ता, यह गीत सिर्फ़ धरती के होंगे, सिर्फ़ प्रेम के होंगे। मैं तेरा और तू मेरी न हो सकी लेकिन ये गीत हम दोनों के होंगे। ये गीत तुम तक

पहुंचेंगे और तू उन्हें गाएगी और तेरे बच्चे-बाले उन्हें गाएंगे और इस तरह सारे संसार में हमारे प्रेम के गीत गूंजेंगे और इन्सान और इन्सान के बीच में एक नया पुल बनाएंगे।"

शान्ता ने आंचल फैलाकर प्रार्थना की, "जाओ, पांडुरंग तुम्हें सदा सुखी रखें।"

वसीम ने कहा—

क्या वह नमरूद की ख़ुदाई थी।

बन्दगी में मेरा भला न हुआ॥[1]

नज़हत बोली—

आए हैं बेकसिये इश्क पे रोना ग़ालिब।

किसके घर जाएगा सैलाबे-बला मेरे बाद॥[2]

नईस बोला—

दिल लगाकर लग गया उनको भी तनहा बैठना।

हाये अपनी बेकसी की पाई हम ने दाद यां॥[3]

रिफ़त ने कहा—

नफ़स न अंजमने आरज़ू से बाहर खैंच॥

अगर शराब नहीं इन्तज़ारे सागर खैंच॥[4]

---

१. क्या वह नमरूद (एक आस्तिक बादशाह जिसने हज़रत इब्राहीम को आग में जला दिया था) की बादशाहत थी कि पूजा-उपासना के बावजूद मेरा कुछ न बना।

२. ऐ गालिब! मेरे बाद प्रेम भी बेकस हो जाएगा। इस बेकसी के विचार से रोना आता है। मैं तो मरने के बाद क़ब्र में चला जाऊंगा लेकिन यह बेकसी कहां जाएगी?

३. किसीसे दिल लगाकर वह भी एकांत के इच्छुक हो गए। इस बेकसी और विवशता की दाद हमें क़यामत के बाद मिल सकती थी, लेकिन हमें यहीं मिल गई।

४. अभिलाषाओं की महफ़िल में शामिल रहने के विचार को न त्याग। यदि इस महफ़िल में मुझे शराब (प्रसन्नता) प्राप्त नहीं तो शराब के प्याले की प्रतीक्षा कर, तेरी बारी भी आ जाएगी।

जमील बोला—

चलता हूं थोड़ी दूर हर एक तेज़ रौ के साथ।
पहचानता नहीं हूं अभी राहबर को मैं ।।[1]

लारी अजन्ता की पहाड़ियों के दामन में आकर रुक गई। यहां से एक छोटा-सा रास्ता एक छोटी-सी घाटी से होकर अजन्ता की गुफाओं को जाता था। अजन्ता की पहली गुफा में हमने बुद्ध की एक बहुत बड़ी प्रतिमा देखी। इतनी बड़ी मूर्ति एलोरा में भी न देखी थी। गाइड ने लैम्प जलाया और बुद्ध का चेहरा पहले से भी अनुभूतिपूर्ण दिखाई देने लगा। इतनी सुन्दरता से तराशा हुआ चेहरा था वह कि आंखों पर पलकों की छाया का भी भ्रम होता था। फिर गाइड ने लैम्प दूसरी ओर ले जाकर उस बुत पर दूसरे कोण से प्रकाश डाला और बुद्ध का बुत मुस्कराने लगा। यह एक मीठी सूझ-बूझ रखने वाली, संसार के दु:ख-दर्द को पहचानने वाली मुस्कराहट थी। उस समय मुझे ऐसा लगा जैसे मानवता अपने इतिहास के सारे पन्ने मेरे सामने उलट रही हो और शताब्दियां अपनी तहें खोलकर मेरे सामने बखेरती जा रही हो। बुद्ध की प्रेम-भरी मुस्कान में मानवता की व्याख्या उजागर होती दिखाई दी, जैसे एक क्षण में क़तरा समुद्र हो जाए और चारों ओर से समुद्र उमड़ पड़े। जैसे कोई मुझपर उत्पत्ति के समस्त भेद और आन्तरिक समावेश प्रकट कर दे। तू मानव है, तू वहशी है, तू अरब है, तू यहूदी है, तू अमरीकी है तू रूसी है, तू भारती है, तू ईरानी है, तू जैनी है, तेरे रुधिर में गीता का उपदेश है, मुहम्मद का कलमा है, मसीह की नम्रता है, बुद्ध का नग़मा है, कबीर का गीत है, चिश्ती का आत्मवाद है, नानक का सन्देश है, तुझमें समस्त सभ्यताएं गडमड हो जाती हैं, क्योंकि तू मानव है जो आगे चला जा रहा है, अपनी विरासत को संभालता हुआ, अपने इतिहास के पन्ने उलटता हुआ ! नये पन्ने पर अपने रक्त से लिखता हुआ, नया मानव जिसका खमीर उसी पुराने मानव से उठा है ! बुद्ध की मुस्कान में यह सब कुछ था, सब

---

१. मैं अपनी मंज़िल और अपने नेता को नहीं पहचानता, हर तेज़ चलने वाले के साथ थोड़ी दूर तक चलता हूं।

लोग मन्त्र-मुग्ध से खड़े थे। वे तीनों सुन्दर लड़कियां, वे तीनों सुन्दर लड़के। वे सेठजी और उनके गुमाश्ते, और वह कलाकार। जैसे आदमी अपने से महान आत्मा के सामने झुक जाए और कोई महान संकल्प कर ले और उसकी सत्ता को मान ले।

मैंने कहा, "यह बुद्ध की प्रतिमा किसी महान कलाकार की रचना होगी।"

गाइड बोला, "इसमें कलाकार का प्रेम बोलता मालूम होता है।"

लेकिन अजन्ता में केवल यही प्रतिमा न थी : यहां बुद्ध की सैकड़ों मूर्तियां थीं और उसके जीवन की समस्त घटनाएं चित्रित थीं। हज़ारों वर्ष पुराने चित्रों में अभी तक रंगों की वही आब-ताब थी, वही चमक-दमक ! सचमुच अजन्ता बड़ी सुन्दर थी। कल्पना से भी अधिक सुन्दर ! अजन्ता में पांच हज़ार वर्ष पहले की साड़ियों के नमूने थे जो आजकल की साड़ियों से अच्छे थे। रानियों के लिए सुन्दर महल थे जो पर्दों और चौकियों सोफ़ा-सैट जैसे फर्नीचर से सजे हुए थे। बाल बनाने के ढंग कोई एक सौ से ऊपर थे। सौंदर्य-सम्बन्धी पूरी कला इन चित्रों में थी और किसी रूप से भी 'मेक्स फैक्टर से कम न थी। पुरुषों ने मोज़े पहन रखे थे, दस्ताने और गुलूबन्द और स्पोर्ट्स की तरह के अंग्रेज़ी कोट, जो हम समझते थे कि भारत में अंग्रेज़ ही लाए थे, लेकिन अजन्ता के चित्रों में वे आज से हज़ारों साल पहले मौजूद थे। शीश महल और आभूषण और फ़ानूस, भोग-विलास के समस्त साधन जुटे हुए थे और महलों में चहल-पहल थी और राजा लोग शिकार खेलते थे और रानियां सोलह-सिंगार करती थीं, और स्त्रियां इतनी सुन्दर होती थीं कि अब अजन्ता के अतिरिक्त ऐसी स्त्रियां कहीं नहीं मिलतीं। ऐसी पतली-पतली उंगलियां, ऐसी नुकीली आंखें, ऐसी पतली-पतली कमरें, भगवान जाने उस युग में स्त्री किस तरह बनाई जाती होंगी। वह बीज अब लुप्त हो गया है शायद !

बहुत देर तक हम लोग गुफाओं में टहलते रहे। सुन्दर लड़कों ने सुन्दर लड़कियां की कमरों में बांहें डालकर उनके कानों में प्रेम के सन्देश भी

पहुंचाए और दीवारों पर अर्धनग्न स्त्रियों की आंखें कनखियों से उन्हें देखती रहीं। फिर गुफाओं से निकलकर नीचे अजन्ता नदी पर चले गए। चारों ओर ऊंची-ऊंची पहाड़ियां थीं और यह अजन्ता एक अंधी पर्वतावली में बन्द थी। पानी धीरे-धीरे सिसकियां भरता हुआ बह रहा था। किनारों पर बड़े-बड़े रंगीन पत्थर पड़े थे। हरे, लाल, पीले और नारंगी पत्थर, इन्हीं पत्थरों के रंग और रोग़न से आज से हज़ारों वर्ष पूर्व इस अजन्ता के नैन-नक्श उभारे गए थे। वह अजन्ता, जिसमें आज से हज़ारों वर्ष पूर्व के भारतीय समाज के एक विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व किया गया था। लगभग बीस-पच्चीस गुफाओं का सिलसिला पहाड़ी की छाती पर फैला हुआ था। अंतिम गुफाएं बिलकुल अपूर्ण थीं और बहुत छोटी-छोटी थीं। यहां चित्र भी अपूर्ण थे और मूर्तिकार ने पत्थरों पर रेखाएं खींचकर नक्श अधूरे छोड़ दिए थे। मालूम होता था अभी कोई भिक्षु कलाकार आएगा और पत्थर काटने का सामान लेकर इन अपूर्ण मूर्तियों को पूरा करना शुरू कर देगा। लेकिन कोई भिक्षु नहीं आया। नदी बहती रही। लोग एक गुफा से दूसरी गुफा में जाते रहे। फिर दिन ढल गया और आकाश पर चांद अजन्ता के बुझते हुए फ्रस्कू की तरह मद्धिम-मद्धिम नजर आने लगा और लारी के भोंपू ने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना शुरू कर दिया।

लारी अजन्ता की चढ़ाई चढ़ आई। वह अजन्ता के गांव से भी आगे निकल गई। यहां सड़क के किनारे कपास का एक बहुत बड़ा खेत था, और उसमें एक किसान, उसकी पत्नी, उसकी लड़की और एक नन्हा-सा लड़का कपास चुन रहे थे। जब लारी गुज़री तो वे लोग कपास चुनते-चुनते खड़े हो गए और आश्चर्य से हमारी ओर देखने लगे। किसान के शरीर पर केवल एक लंगोटी थी। छोटा बच्चा नंगा था। पत्नी और लड़की यदि स्त्रियां न होतीं तो वे भी नंगी होतीं। फिर भी उनके कपड़े तार-तार थे। किसान की बेटी बड़े आश्चर्य और चाव से लारी में बैठी हुई सुन्दर लड़कियों को तकती रही। वह लड़की स्वयं भी कुछ कम सुन्दर न थी, परन्तु उसके शरीर को कभी अच्छे कपड़े न मिले थे और उसने कभी स्नानागार न देखा था, उसने

कभी पुलाव न खाया था, और कभी ग़ालिब की कविता न सुनी थी। जब हम अजन्ता देखने जा रहे थे तो उसी सड़क के किनारे उसी खेत में ये लोग कपास चुन रहे थे। वे भोर के धुंधलके में रुई के गाले चुनने आए थे और जब सूर्य अस्त हो रहा था और हम लोग अजन्ता देखकर वापस घरों को जा रहे थे, वे लोग अभी तक उस खेत में कपास चुन रहे थे। लारी आगे निकल गई, और किसान की आँखें बहुत देर तक हमारी लारी का पीछा करती रहीं। वे आंखें जैसे कह रही थीं—'तुम अजन्ता देखकर आ रहे हो, जब तुम अजन्ता देखने जा रहे थे उस समय अभी भोर के तारे फीके न पड़े थे और मैं और मेरी पत्नी, और मेरी बेटी, और मेरा नन्हा लड़का—इसी खेत में काम कर रहे थे और अब तुम अजन्ता देखकर वापस जा रहे हो और हम लोग अभी तक इस खेत में काम कर रहे हैं। हमने अजन्ता नहीं देखी। वर्षों से अजन्ता के गांव में रहते हुए भी अजन्ता नहीं देख सके, क्योंकि अजन्ता गुफाओं में बन्द है। बुद्ध ने अजन्ता गुफाओं में बनाई, फिर हिन्दू राजाओं ने अपने महलों में और मुग़लों ने अपने अन्त:पुरों में और मकबरों में; और अंग्रेजों ने अपने बंगलों में; और तुमने अपने घरों और फ्लैटों में; और इस प्रकार यह सुन्दर, कोमल अजन्ता एक गुफा से दूसरी गुफा में पहुंचती जा रही है। आओ, इस सुन्दरता और कोमलता को गुफाओं से निकालकर बाहर ले आएं और इसे खेतों और कारखानों में फैला दें! अजन्ता के पुजारियो! अजन्ता के मालिको, अजन्ता के प्रेमियो! आओ कि इसीमें तुम्हारी गति है, इसीमें मेरी प्रसन्नता है, इसीमें मानवता की चरम सीमा है। तुमने देखा कि अजन्ता गुफाओं में रहकर, पथरीली दीवारों की रक्षा में रहकर भी जीवित नहीं रह सकी, यह हिन्दू अजन्ता, मुस्लिम अजन्ता और पश्चिमी अजन्ता! आओ, मेरे साथ मिलकर एक नई अजन्ता बनाओ—एक नई अजन्ता, जिसकी नींवें मेरे खेतों में हैं, और इसलिए अमिट हैं, अमर हैं, अमर हैं!'

वह अर्ध-नग्न ब्राह्मण देर तक खड़ा रहा और हमारी लारी की ओर देखता रहा। उसने शायद यह सब कुछ न कहा था। शायद मेरे कानों ने

भी यह सब कुछ न सुना था, क्योंकि मैं तो उसकी लड़की की ओर देख रहा था, जिसका चेहरा प्रसन्नता और आश्चर्य से लारी में बैठी हुई सुन्दर लड़कियों की ओर झांक रहा था, और जिसके हाथ में रुई के सफेद फूल थे और उसकी शरमाई हुई आंखों की मौन भाषा में कंवारेपन की स्वच्छता झांक रही थी। वह उस रूई के टापू में खड़ी किसी काल्पनिक जगत् में गुम-सुम, सबसे अलग, बहुत दूर होकर मुस्करा रही थी। मैंने उसे देखा, उसने मुझे नहीं देखा। वह बहुत दूर थी। वह मुझे सुन न सकती थी, मैं उसे समझ न सकता था। हां, वह मुस्कराहट जैसे बार-बार मुझे कह रही थी—'मैं मुस्कान नहीं हूं, मैं तो एक किरण हूं उषा की, उस नई अजन्ता की जो अभी यहां आया नहीं, जो अभी दूर, बहुत दूर, उन घूमते हुए मैदानों और खेतों से परे क्षितिज पर मुस्करा रहा है !'

लारी के मुसाफिर चुप थे। सूर्य अस्त हो रहा था। नईम धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा—

इक निगारे आतिशे-रुख सर खुला ![1]

---

१. अग्नि की तरह दहकते चेहरे वाली एक प्रेमिका, जिसके केश खुले हैं।

मरने वाले साथी की मुस्कराहट

साथी भारद्वाज से मेरी मुलाकात १९३७ में लाहौर में हुई थी। उन दिनो भी पार्टी अवैध घोषित हो चुकी थी। और पार्टी के साथी 'अंडर-ग्राउंड' हो गए थे। भारद्वाज का रंग सांवला, कद छोटा और शरीर दुबला-पतला था। उसे देखकर यह अनुमान ही नहीं हो सकता था कि इस मिट्टी के पुतले के भीतर कितनी ज्वाला छिपी हुई है और यह शरीर इतना परिश्रम कर सकता है, अपने ऊपर इतनी विपदाएं झेल सकता है जो एक राष्ट्रवादी और समाजवादी को अपने जीवन में पेश आती रहती हैं।

मैं उन दिनों लॉ कालेज में पढ़ता था और बौद्धिक रूप से इतना श्रद्धालु नहीं था जितना कि व्यक्तित्वोपासक। भारद्वाज का व्यक्तित्व मुझे लेशमात्र भी प्रभावित न कर सका। उन दिनों पंजाब में कांग्रेस के भीतर खैंचातानी चल रही थी और युवकमंडली उसके राजनीतिक मतभेदों से ऊबकर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की ओर आ रही थी। समाजवादियों का नारा था—'पापुलर फ्रंट'। अतएव उन दिनों कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में समाजवादी और कम्यूनिस्ट रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी के मेम्बर, और पुरानी विद्रोही पार्टी के सदस्य, और 'नौजवान भारत सभा' के जोशीले साथी, और अराजकतावादी, आतंकवादी सभी पाए जाते थे। यह पापुलर फ्रंट अवश्य था पुराने कांग्रेसियों के विरुद्ध, परन्तु फ्रंट नहीं था। दिन-रात ब्रेडलॉ हाल में जलसे होते और साथियों की परामर्श-समिति में किसी क्रियात्मक प्रोग्राम पर विचार करने की अपेक्षा यह बहस छिड़ जाती कि अमुक व्यक्ति सी० आई० डी० का है या नहीं? मैंने पूरे एक वर्ष तक ये मीटिंगें देखी हैं जिनमें सिवाय इसके और कुछ नहीं हुआ कि कुछ साथियों

पर सी० आई० डी० के आदमी होने का आरोप लगाया गया। और इसके उत्तर में उन्होंने दूसरे साथियों पर आरोप लगाए और पूरे एक वर्ष में इस पापुलर फ्रन्ट में इसके अतिरिक्त और कोई काम नहीं हुआ; और अन्त में यह कोई भी निश्चय न कर सका कि कौन सी० आई० डी० में है और कौन नहीं है ?

इन्हीं दिनों जबकि पंजाब के नौजवानों में हिंसात्मक विद्रोह का भाव पाया जाता था और वह अपने सामने कोई सीधा मार्ग न देखकर कभी अराजकता की ओर झुकते थे और कभी आतंक फैलाने के लिए तैयार हो जाते, कभी समाजवादियों में घुसने की कोशिश करते तो कभी रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी के फट्टे में टांग अड़ाते, इन्हीं दिनों मेरी मुलाकात स्वर्गीय भारद्वाज से हुई। लाहौर में उनका आगमन बिलकुल गुप्त रखा गया। केवल कुछ लोगों को ही इसका ज्ञान था।

उनके आगमन से कुछ समय पूर्व समाजवादी राजनीति को सुलझाने के कई प्रयत्न किए जा रहे थे—'लाजपतराय भवन' में धड़ाधड़ सभाएं हो रही थीं और पंजाब-भर के नौजवान समाजवादी सदस्य इसमें भाग लेने के लिए बुलाए गए थे। वास्तव में निश्चय यह करना था कि अमुक व्यक्ति खुफिया पुलिस से सम्बन्ध रखता है अथवा नहीं ? परन्तु सभा के बाहर जनता में कांग्रेसी सदस्यों में और स्वयं सरकार के हलकों में यह चर्चा थी कि पंजाब के समाजवादी नौजवान क्रांति की तैयारियां कर रहे हैं। अत-एव समाचार-पत्रों में भी इसका वर्णन हुआ और खुफिया पुलिस के सैकड़ों सिपाही, लाजपतराय भवन से ब्रेडलॉ हाल, गवर्नमेंट कालेज और सनातन धर्म कालेज और म्युनिसिपल बाग में चारों ओर फैले हुए थे। मुझे स्मरण है कि हम लोग कई बार नाश्ता करना आदि सब-कुछ भूल जाते थे और केवल आरोपों से अपना पेट भरते थे। और जब कभी सभा के थके-हारे बाहर निकलते तो प्रेस वाले हमें घेर लेते। प्रतिदिन यही पूछते, "क्या फैसला हुआ ?"

हम लोग बड़ी रुखाई से उत्तर देते, "हो जाएगा, देखते जाओ!" और

फिर यह खबर खुफिया पुलिस के लोगों तक इस रूप में पहुंचती, "क्रांति हो जाएगी, देखते जाओ।" और इन्स्पैक्टर कांपते हाथों से अपना पिस्तौल टटोलने लगते।

ये सभाएं कदाचित् पांच या छह दिन होती रहीं। इनमें कुछ तो बड़ी सभाएं होती थीं और कुछ छोटी जिनमें विशेष-विशेष टुकड़ी के सदस्य ही भाग ले सकते और वहां वे ये फैसला करते कि अब बड़ी सभा में पहुंचकर हमारी टुकड़ी को कौन-सा पैंतरा बदलना होगा, और क्या ढंग अपनाना होगा। छठे या सातवें दिन लाजपतराय भवन की लाइब्रेरी के ऊपर एक कमरे में एक टुकड़ी की सभा हुई। उसमें साथी भारद्वाज भी शामिल हुए। और मैंने पहली बार उन्हें यहीं देखा। मुझे उनके बारे में बहुत कुछ कहा गया था, "वह यहां पार्टी के विस्तार देने के सम्बन्ध में आए हैं।" "बड़े उच्चकोटि के नेता हैं। "अंडर-ग्राउंड रहकर सारे देश का दौरा कर रहे हैं।" "उन्हें आज तक कोई गिरफ्तार नहीं कर सका" आदि। परन्तु मैं तो भारी-भरकम और तोंदियल नेताओं से प्रभावित होता था इसलिए उनके व्यक्तित्व का मुझपर कुछ प्रभाव न पड़ सका। खैर, यह तो 'पहली नज़र' की बात थी। परिचय के बाद बातें शुरू हुईं और वहीं सी० आई० डी० का मामला सामने आया। अब जो भारद्वाज ने साथियों को आड़े हाथों लिया तो मैं देखता ही रह गया। जैसे भारद्वाज की जिह्वा से अग्निबाण निकल रहे थे, और साथियों के आरोपों पर धड़ाधड़ पड़ रहे थे। आंखों में ज्वाला नाच रही थी और उनका सारा चेहरा बदल गया था। कदाचित् यह वह भारद्वाज न था जो अभी दो मिनट पूर्व परिचय के समय हंस-हंसकर बातें कर रहा था। हमारी इस सभा में बुद्धिमत्ता के देव भी बैठे हुए थे और उन्होंने अनगिनत दलीलें देकर भारद्वाज को प्रभावित करना चाहा, परन्तु वह भूल पर थे, इसलिए उनकी एक न चली और भारद्वाज ने पहले तो व्यंग्य पूर्वक इस मामले को सुलझाया जो पंजाब की समाजवादी राजनीति का बहुत बड़ा अंग था—अर्थात् कौन कर्मचारी खुफिया पुलिस से सम्बन्ध रखता है। उसके बाद तेजाबी स्वर में उसका उचित महत्त्व जताया और बताया कि

यदि यह मामला इस समय न सुलझ सकता हो तो क्या यह सम्भव नहीं कि छोटे-छोटे मामलों को ही ले लिया जाए। मजदूरों और किसानों में भी काम किया जा सकता है, और विद्यार्थियों में भी। और अराजकता, आतंकवाद से पृथक् रहकर एक संगठित पार्टी बनाई जा सकती है जो विद्यार्थियों के सुधार के लिए कार्य कर सके। फिर उन्होंने शोषक जन-क्रांति और समाजवादी क्रांति के दर्जे बताए और मैं इस दुबले-पतले से व्यक्ति की ओर आश्चर्य से देखता रहा। बुद्धि के पुतलों ने भारद्वाज की दलीलों को कई बार काटने की कोशिश की, लेकिन उन्हें हर बार मुंह की खानी पड़ी। फिर बात का रुख गुट-बन्दी और गिरोह-बन्दी के नाज़ुक भेद की ओर मुड़ गया। फिर कुछ ऐसी बातें भी निश्चित हो गई जो इससे पूर्व अनेकों बार सभाएं कर-करके भी हम निश्चित न कर सके थे। इन बातों को कागज़ के टुकड़ों पर लिखा गया और फिर सब लोग उनपर हस्ताक्षर करने लगे।

इतने में दरवाज़ा खटका।

सब लोग मुड़कर देखने लगे।

'कौन है ?'

'पुलिस है दरवाजा खोलो !

'पुलिस!'

कमरे में अंधेरा था। फिर जैसे अंधेरा और बढ़ गया। कमरे का एक दरवाज़ा लायब्रेरी की ओर खुलता था। उधर भी पुलिस थी। एक दरवाज़ा लाला अचिन्तराम के कमरे की ओर था, वहां भी पुलिस थी और कामरेड भारद्वाज को हर हालत में पुलिस के हाथों से बचाना था। एकाएक कुछ साथियों ने कुर्सियां उठाकर हाथों में ले लीं—भारद्वाज ने तुरन्त उठकर जल्दी-जल्दी कागज के टुकड़ों को फाड़ा और उन्हें निगलना शुरू कर दिया। वह दृश्य अब भी मेरे सामने है। वह मेज के कोने पर खड़ा कागज़ फाड़-फाड़कर जल्दी-जल्दी निगल रहा था। हम लोग कुर्सियां, स्टूल उठाए हुए खड़े थे। पुलिस दरवाजा तोड़ रही थी और भारद्वाज को

बचाने की कोई शकल नज़र न आती थी। एकाएक भारद्वाज ने पिछली ओर की खिड़की खोली और पीछे की ओर देखा—दो मंज़िल नीचे की ओर, जहां एक नये फ्लैट की दीवारें उठाई जा रही थीं। ये दीवारें आधी मंज़िल तक आ चुकी थीं। भारद्वाज ने खिड़की में बैठकर और टांगें दूसरी ओर लटकाकर कहा, "अच्छा, तो मैं चलता हूं।"

"क्या करते हो—मर जाओगे!" एक साथी ने कहा।

"मैं नहीं मरूंगा। छलांग लगाकर इन दीवारों पर कूद जाऊंगा और वहां से छलांग लगाकर नीचे आंगन में, जहां किसी आदमी का घर है—फिर देखा जाएगा।"

फिर कामरेड भारद्वाज ने मेरी ओर देखा! "तुम भी चले आओ। तुम इस सभा में पहली बार आए हो, पुलिस को तुम्हारा पता नहीं चलना चाहिए।"

मैंने नीचे—दो मंज़िल नीचे—की ओर भयभीत दृष्टि से देखा।

भारद्वाज ने छलांग लगाते हुए कहा, "आओ!"

और वह नीचे कूद गया।

मैं भी तुरन्त ही कूद गया।

हमारे पांव आधी बनी हुई दीवारों से टकराए, फिर वहां से उछलकर हम लोग नीचे आंगन में जा पड़े—दो मंज़िल नीचे! यहां आंगन में एक स्त्री सो रही थी। वह जाग उठी। हमें देखकर उसकी घिग्घी बंध गई। मैं उसके कण्ठ की ओर देख रहा था कि वह चिल्लाना चाहती थी, परन्तु मारे भय के उसकी आवाज़ न निकलती थी। हम जल्दी से आंगन में से भीतर चले गए। सामने कमरे में प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता देवराज सेठी बैठे हुए थे, बोले—"आप कैसे आए, बाहर से तो दरवाज़ा बन्द है, पुलिस ने घेरा डाल रखा है।"

हमने कहा, "हम ऊपर से आए हैं, और सब बाहर निकलना चाहते हैं।"

देवराज सेठी बहुत देर तक सोचते रहे—यही कोई दो-चार मिनट;

फिर बोले, "एक रास्ता है, इससे आप बाहर के आखिरी दरवाज़े तक तो पहुंच जाएंगे, लेकिन वहां भी आपको पुलिस मिलेगी ।"

मैंने कहा, "तो यहीं रुक जाएं ।"

भारद्वाज ने कहा "नहीं, यह ग़लत है । इससे इनपर आंच आएगी और फिर यह अनुचित है ।" फिर सेठी साहब की ओर मुड़कर कहा, "आप वह रास्ता बताइए ।"

एक क्षण के विलम्ब के बाद उन्होंने हमें रास्ता बताया । हम आगे बढ़ गए । सब ओर ठीक-ठाक था । और आगे बढ़े तो गेट दिखाई दिया । पिछ-वाड़े का गेट । यहां पर पुलिस का केवल एक सिपाही खड़ा था । भारद्वाज ने कहा, अपने हाथ पतलून की जेब में इस तरह डाल लो जैसे तुम पिस्तौल हाथ में थामें हो और उसे पतलून के जेब में डाले चल रहे हो । अगर बच गए तो ठीक, नहीं तो कोई और उपाय करेंगे । और हां, बड़े आराम से धीरे-धीरे चलो ।

हम लोग टहलते-टहलते पतलून में हाथ डाले गेट पर पहुंच गए । यहां पुलिस के सिपाही ने हमें घूरकर देखा। हमने उसे घूरकर देखा । भारद्वाज ने पुलिस के आदमी के सामने पतलून में पड़े हुए हाथ को ज़रा हिलाया। पुलिस का आदमी कांपकर दूसरी ओर देखने लगा । हम लोग बाहर निकल गए टहलते-टहलते अगले मोड़ तक । यहां भारद्वाज ने मुझसे हाथ मिलाया और कहा, "अब मैं अकेला चला जाऊंगा ।"

मैंने पूछा, "अकेले चले जाओगे ?"

वह मुस्कराया । बड़ी विचित्र-सी मुस्कराहट थी । वह बोला, "मैं सारे रास्ते जानता हूं । अकेला ही जाऊंगा । मुझे पकड़ना कोई आसान काम नहीं है । साथी ! हम तो एक विचार के सहारे उड़ते हैं और उड़ने वाले को पकड़ना आसान नहीं होता !"

वह फिर मुस्कराया । उसने हाथ मिलाया और मोड़ पर ग़ायब हो गया ।

इसके बाद मैं भारद्वाज से कभी नहीं मिला। इसके बाद मेरे जीवन में कई मोड़ आए। देश की राजनीति ने भी कई रूप बदले। भारद्वाज की पार्टी जिसका वह सदस्य था, देश की महत्त्वपूर्ण राजनीतिक पार्टियों में गिनी जाने लगी। फिर मैंने सुना कि भारद्वाज को क्षय रोग हो गया है। ज्वाला ने जला-जलाकर अपने-आपको राख कर दिया। उसका शरीर शायद उस भड़कती हुई आग की तपिश सहन न कर सकता था जो उसके अंग-अंग में रची हुई थी, जो उसे भारत के चारों खूंटों में घुमाए फिरती थी, जिसने उसे दो-मंजिला मकान से छलांग लगाने पर विवश कर दिया था, जिसने उसे भूखा-प्यासा दर-बदर ठोकरें खाने पर विवश कर दिया था, जिसने उससे अपना घर-बार, मित्र, सम्बन्धी तक छुड़ा दिए थे। सारा भारत एक जंगल था और फ़िरंगी साम्राज्यवाद के शिकारी अपनी बन्दूकें उठाए उसकी खोज में उसके पीछे-पीछे भागे-भागे फिरते थे।

भारद्वाज को क्षय हो गया और मैं यही सोच-सोचकर हैरान होता था कि ज्वाला को क्षय कैसे हो सकता है? पारा किस प्रकार शान्त, निश्चेष्ट रह सकता है? बिखरे हुए तूफान के कौन बन्ध बांध सकता है। भारद्वाज क्षय के बिस्तर पर कैसे लेटा है? कभी-कभी मैं यूं ही सोचता तो लाजपतराय भवन के मोड़ पर मुझे उसका चेहरा दिखाई दे जाता और उसकी विचित्र-सी मुस्कराहट और मुस्कराकर उसका हाथ मिलाना—"मैं अकेला चला जाऊंगा—मैं सब रास्ते जानता हूं।"

आज भारद्वाज हममें नहीं है। वह अकेला चला गया है और यद्यपि वह सब रास्ते जानता था परन्तु वह अपने ही रास्ते पर गया है और कोई

उसे किसी दूसरे रास्ते पर नहीं चला सका, और कोई उसे क़ैद नहीं कर सका और क्षय रोग भी उसकी जान न ले सका। उसकी मृत्यु की घटनाएं सब लोग जानते हैं, फिर भी मैं उन्हें यहां दुहराना चाहता हूं; इसलिए कि मेरे लिए ये घटनाएं एक विचित्र-सा महत्त्व रखती हैं।

पन्द्रह अगस्त की आजादी के बाद १९४८ में ४ अप्रैल के दिन राज्य ने उसे गिरफ्तार करना चाहा। भारद्वाज उस समय क्षय के बिस्तर पर रक्त उगल रहा था। उसे १०४ डिगरी का तेज ज्वर था। कई वर्षों से वह अपने काम को छोड़ चुका था क्योंकि खांसी ने उसके फेफड़ों को छलनी कर दिया था। दीपक बराबर जल रहा था, लेकिन फ़ानूस के टुकड़े-टुकड़े हो गए थे। यह सच है कि यदि वह मेरी तरह आराम का जीवन व्यतीत करता, अच्छा खाता, पहिनता, सैर करता, बीबी-बच्चों में रहता तो शायद उसे क्षय न होता, वह इस प्रकार लहू न उगलता, खांसी से उसके फेफड़े छलनी न होते और यह भी सच है कि वह अपने मार्ग से हट जाता! इसी प्रकार मजदूरों और किसानों के राज्य के स्वप्न न देखता जो वह पन्द्रह अगस्त की आजादी से पहले देखता चला आया था। यदि वह भारत के कुछ लाख पूंजीपतियों का ख्याल रखते हुए इस देश के करोड़ों अभागे वासियों की हिमायत का ख्याल न करता तो आज फिर उसे पुलिस इस प्रकार गिरफ्तार करने न आती जिस प्रकार आज से दस वर्ष पहले वह उसे लाजपतराय भवन में गिरफ्तार करने आई थी।

परन्तु आज उसके बच निकलने का कोई रास्ता न था। रास्ते सब खुले थे और खिड़कियां भी, फिर भी उसके बच निकलने का कोई रास्ता नहीं था। और जब वे लोग उसे गिरफ्तार करने के लिए आए तो वह उठकर बिस्तर पर बैठ गया और [illegible] १०४ डिगरी का ज्वर था और वह खून उगल रहा था, फिर भी वह बिस्तर पर उठकर बैठ गया और

कपड़े बदल कर चलने के लिए तैयार हो गया। और जब वह घर से चला तो उसके चेहरे पर विचित्र-सी मुस्कराहट थी। आज मैं उस मुस्कराहट को जान गया हूं, क्योंकि मैंने उसे इससे पूर्व भी देखा है और मैं भारद्वाज की मां से कहना चाहता हूं—मां, चिंता न करो, तेरा बेटा मर गया है लेकिन हमें वह ऐसी मुस्कराहट दे गया है जो कभी नहीं मर सकती, जो कभी नहीं मिट सकती ! जो मानव के दुःख की तरह स्थायी है, और तेरी ममता की तरह अमिट है। यह मुस्कराहट हमें आगे का रास्ता दिखाती है—वह रास्ता जो जेलों, क़ैदों और गोलियों की बौछार से गुज़रता हुआ किसानों और मज़दूरों के राज को जाता है। १९३७ में भी भारद्वाज इसी रास्ते पर चल रहा था कि जब एक प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता देवराज सेठी ने उसे बचाया था और आज भी वह उसी रास्ते पर चल रहा था कि जब कांग्रेसी सरकार ने उसे गिरफ्तार करने का आदेश दिया था। उसका रास्ता वही था। केवल कांग्रेस का रास्ता बदल गया था। भारद्वाज का रास्ता वही था, केवल बेड़ियां बदल गई थीं। पहले फिरंगी की बेड़ियां थीं, आज कांग्रेसी सरकार की बेड़ियां थीं। और वह खून उगलता हुआ, खांसता हुआ, लेकिन मुस्कराता हुआ सीढ़ियां उतर रहा था। नहीं, वह फिर किसी दोमंज़िला मकान से कूद रहा था। वह फिर अपने को गिरफ्तार करने वालों की आंखों में धूल झोंक रहा था और उसकी मुस्कराहट कुछ कह रही थी। मैं अब स्पष्ट रूप से जानता हूं कि वह क्या कह रही थी, "मुझे गिरफ्तार करने वाले मित्रो ! एक समय तक हमने एक-दूसरे का साथ दिया है, एक-दूसरे के हाथ में हाथ डालकर आज़ादी की कंटीली मंज़िल की ओर आगे बढ़े हैं। यहां इस छोटी-सी फुलवाड़ी में छोटे-से बहते हुए चश्मे को देखकर क्यों तुम रुक गए हो और मुझे भी आगे बढ़ने से रोक रहे हो ? आज़ादी का स्रोत तो बहुत दूर है और मुझे आगे जाना है और तुम मुझे रोक न सकोगे। मैं अपना रास्ता जानता हूं। मैं वह रास्ता भी खूब पहचानता हूं जिसपर अब तुम जा रहे हो। यह रास्ता जो शुरू में बड़ा सुन्दर नज़र आता है लेकिन जिसकी सीमाएं विनाश, फ़ासिज्म और जन-

शत्रुता से जा मिलती हैं। इस रास्ते को छोड़ दो, इस रास्ते को छोड़ दो मित्रो !"

लेकिन मित्रों ने इस रास्ते को नहीं छोड़ा और भारद्वाज को जेल में ले गए, जिसके भवन पर तिरंगा झण्डा लहरा रहा था, जिसे ऊंचा करने के लिए भारद्वाज ने अपने जीवन के सर्वोत्तम वर्ष, अपनी जवानी के सुन्दर दिन, अपनी चांद-सी रातें, अपने चिन्तन के सर्वोत्तम क्षण न्यौछावर कर दिए थे !

चार दिन के बाद कॉमरेड भारद्वाज उसी जेल में मर गया। अंतिम क्षणों में उसने अपनी आंखें खोलीं। अपने हाथ की मुट्ठी बन्द की, और उसे ऊंचा करते हुए देश के मज़दूरों और किसानों और दिन-रात काम करने वाले निर्धनों को नमस्कार किया और मर गया। और मैं सोचता हूं मैं इस भारत का कैसे विश्वासपात्र रहूंगा, जिसने उसे इस प्रकार मर जाने दिया। कैसे उन लोगों की इज़्ज़त कर सकूंगा जिन्होंने उसे मृत्यु-शय्या से उठाकर जेल की सलाखों के अन्दर बन्द कर दिया। कैसे उनके गुण गाऊंगा जिन्होंने उसके शव के ऊपर तिरंगा झण्डा लहराया। यह भारत तो मेरा नहीं है। यह भारत तो भारद्वाज के स्वप्नों का भारत नहीं है। यह भारत तो उन लाखों अनजाने अज्ञात सिपाहियों का नहीं है जिन्होंने हंसते-खेलते स्वतन्त्रता के लिए अपनी गरदनें कटवाई हैं। मैं सोचता हूं तो फिर मैं क्यों न उस मुस्कराहट का विश्वासपात्र बनूं जो मरते हुए भारद्वाज के होंठों पर खेल रही है, जो अभी मानवता की एक कोमल-सी कली है। एक नन्हा-सा गीत है, एक कोमल-सी लहर है, लेकिन जो एक दिन फूल की तरह खिल जाएगी, संगीत की तरह गूंजेगी, और समुद्र बनकर चारों ओर फैल जाएगी !

फूल सुर्ख हैं

मैं प्राय: उसे अपनी मिल के बड़े गेट के सामने चक्कर लगाते हुए देखा करता था। उसकी आयु बारह तेरह वर्ष के लगभग होगी। दुबला-पतला सांवले रंग का लड़का था वह। मुंह पर शीतला के दाग़ थे। वह प्रतिदिन हमारी मिल के बड़े गेट के सामने चक्कर लगाया करता था। प्रात: जब हाजिरी होती, दोपहर को जब खाने के लिए छुट्टी मिलती, शाम को जब हम मिल से निकलकर घर जाते, मैं उसे प्रतिदिन देखता था। वह मिल में नौकरी करने के लिए नहीं आता था, क्योंकि वह दोनों आंखों से अन्धा था और हमारे देश में तो अभी आंख वालों ही को काम नहीं मिलता, अन्धों को क्या मिलेगा। अन्धों के लिए अभी भीख मांगना ही लिखा है।

परन्तु यह अन्धा लड़का बहुत होशियार था। मैंने उसे कभी भीख मांगते नहीं देखा। उसकी आवाज़ बड़ी बारीक, मधुर और प्रिय थी। वह सदैव अपने दायें हाथ में फ़िल्मी गीतों और कहानियों का बंडल लिए हुए आता और नये-नये फ़िल्मी गीत गाता हुआ हमारी मिल के सामने चक्कर लगाकर फ़िल्मी गीतों और कहानियों की पुस्तकें एक-एक आने में बेचता और हममें से कई एक इस अन्धे लड़के से ये पुस्तकें खरीद लेते थे। मुझे फ़िल्में देखने का बहुत शौक़ है। सभी को होता है। एक तो यहां मिल में सुबह से शाम तक इतना सख्त काम होता है कि सारा शरीर दुखने लगता है और फिर इतने परिश्रम के बाद जो पैसे मिलते हैं इसमें किसी तरह भी घर का खर्चा ठीक ढंग से नहीं चल सकता। आदमी न खा सके, न पहिन सके, न सुख से रह सके और दिन-भर मज़ूरी करता रहे तो शाम को ताड़ी

पीने या फ़िल्म देखने को जी न चाहेगा तो क्या चाहेगा ! मैं ताड़ी तो कभी नहीं पीता, हां फ़िल्म अवश्य देखता हूं, जिसमें नाच होते हैं, और गाने होते हैं, और अच्छे-अच्छे सुन्दर घर होते हैं और स्त्रियां और पुरुष बड़े सुन्दर वस्त्र पहिने मोटरों में घूमते हैं, और एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। मैंने देखा है कि फ़िल्मों में हर व्यक्ति हर समय प्रेम करता रहता है। जिसे देखो प्रेम कर रहा है, या करने जा रहा है, करके मरने जा रहा है। न जाने ये लोग काम किस समय करते हैं ? कभी मिल में जाते हैं, या नहीं ? इतना महंगा कपड़ा होने पर इतने सुन्दर वस्त्र कहां से पहिन लेते हैं ? इनके पास इतना पैसा कहां से आता है कि इस शान से रह सकें। हम लोग तो सात जन्म भी परिश्रम करते रहें तो भी इतना पैसा न मिले; और फिर फ़िल्मों में एक विचित्र बात मैंने यह देखी है कि जो धनवान है वह निर्धन से प्रेम कर रहा है। जो मिल मालिक का बेटा है वह मज़दूर की बेटी से प्रेम कर रहा है और जो मज़दूर का बेटा है वह मिल-मालिक की लड़की से प्रेम कर रहा है। और लड़की है कि सिर झुकाए प्रेमी के क़दमों में गिरी जा रही है। और अन्त में मिल-मालिक स्वयं सब-कुछ त्यागकर मज़दूरों का भला चाहने लगते हैं। भई, ऐसे मिल-मालिक और उनकी ऐसी लड़कियों का किसीको पता मालूम हो तो हमें बताइए। हम तो इसी बात के लिए तरसते रह गए कि मिल-मालिक तो क्या मिल का फ़ोरमैन ही हमसे सीधी तरह बात कर ले। लेकिन साहब फिर भी फ़िल्म में समय अच्छी तरह कट जाता है, और वह भी चार आने में। लेकिन सिनेमा भी तो रोज़-रोज़ नहीं देखा जाता। कई बार तो नई-नई फ़िल्में आती हैं और आकर चली जाती हैं, और हम नहीं देख सकते, चवन्नी भी तो पास नहीं होती। इस अवसर पर हम इस अंधे लड़के से पुस्तक खरीद लेते हैं। फ़िल्म की कहानी पढ़ते हैं, गीत उससे सुनते हैं और सुनकर स्वयं गुनगुनाते हैं। एक आने में नशा-पानी हो जाता है। अपने जीवन में इतनी वीरानी है कि यदि कहीं से भी प्रकाश की किरण नाचती हुई दिखाई देती है, हम उसे देखकर ठिठक जाते हैं, और सोचते रह जाते हैं। भैया ! क्या यह किरण

कभी हमें भी मिल सकती है ; यह रसीला नृत्य कभी अपने आंगन में भी जाग सकता है ? यह लहराती हुई धुन कभी अपने जीवन का गीत बन सकती है ? काम करते-करते हम यही सोचने लगते हैं और दूसरों के लिए सुन्दर कपड़े बुनते-बुनते अपने लिए भी सुन्दर सपने बुनने लगते हैं। फिर फ़ोरमैन आकर हमें गाली देता है और हमारे सपने टूट जाते हैं; और सुन्दर कपड़ा गांठों में बन्द होकर चला जाता है। और हमारे शरीर और हमारे सपने नंगे के नंगे रह जाते हैं।

इन्हीं बातों से तंग आकर हमने एक दिन मिल में हड़ताल करा दी। लाल झंडेवाले आए थे और उन्होंने हड़ताल कराई थी। लाल झंडेवाले पहले भी आते रहते थे लेकिन मैं कभी उनकी यूनियन में शामिल न हुआ था। मैं दिन-भर काम करता, शाम को कभी-कभार फ़िल्म देखता और फ़िल्मी गीत गुनगुनाता, फिर घर चला जाता और रूखी-सूखी खाकर भगवान का धन्यवाद करता और सो जाता। लेकिन जब अनाज महंगा हो गया और कपड़े का भाव चौगुना हो गया और कोयला, जो हर रोज़ के जलने की चीजें है, ब्लैकमार्किट के भाव से मिलने लगा तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मुझे जो वेतन मिलता है वह घटकर एक-चौथाई रह गया है। वेतन तो वही था—उतने ही पैसे थे मगर अब पूरे न होते थे। न रोटी पेट भरकर मिलती, न बच्चों के कपड़े। अब तो कोठरी का किराया देना भी कठिन हो गया था। अब मैंने सिनेमा देखना भी बन्द कर दिया। इससे पहले मैं भी फ़िल्मों के गीत सुन-सुनकर उसी तरह गीत गढ़ लिया करता था और सीटी में गा-गाकर खुश होता था। अब होंठों पर पपड़ियां जमने लगीं और गीत न गुनगुनाए जाते थे, न गढ़े जाते थे। कभी-कभी सोचता कि वह फ़िल्मी कारखाने वाले की लौंडिया, जो मज़दूर से प्रेम करती है, इस समय कहीं से मिल जाए तो मजा आ जाए ; परन्तु यह बात जीवन में कहां? मिल-मालिक की लड़की नीले रंग की एक मोटर में कभी-कभी मिल में आती थी। वह मोटर में आती थी और मोटर में जाती थी और उसने हमारी ओर कभी आंख उठाकर भी नहीं देखा कि हम इतना ही कह सकते, "मिल

के बिछुड़ गईं अखियां !"

तो जब कोई सहारा न रहा और लाल झंडे-तले खड़े होकर मज़दूरों ने हड़ताल करने की सौगंध ली तो मैं भी पहली बार उनमें शामिल हो गया। हड़ताल करना कोई आसान काम नहीं है। जो आदमी दिन-रात परिश्रम करने का अभ्यस्त हो उसके लिए चार दिन भी बेकार रहना कठिन है। अपनी मशीन की हत्थियां और चर्खियां बार-बार आंखों के सामने घूमती हैं। फिर पैसे भी तो नहीं होते। अपना ही पेट काटकर हड़ताल करनी पड़ती है। कोई बैंक में तो रुपया होता नहीं कि आदमी निकलवाता चला जाए और घर में बैठकर आराम से खाता जाए—जैसे हमारे मिल-मालिक कर सकते हैं। सभी कहते हैं कि मज़दूर हड़ताल न करें, काम अधिक करें और परिश्रम अधिक करें और कपड़ा अधिक बुनें। हमें यह सब स्वीकार है। हम काम भी अधिक करते हैं, कपड़ा भी अधिक बुनते हैं, लेकिन बाज़ार में कपड़े का भाव बढ़ता जाता है। मिल-मालिक का पेट फूलता जाता है और हमारी रोज़ी कम होती जाती है। भैया मेरे ! किसीसे कहो, इधर भी तो ध्यान दे। पहले हम चवन्नी का सिनेमा देखते थे अब वह भी न रहा तो क्या करें ?

खैर जी, जब हड़ताल हुई और बड़े धूम-धड़क्के से हुई और कोई मज़दूर मिल में नहीं गया, सिवाय आठ-दस पिट्ठुओं के, तो हम लोगों ने बड़ी खुशी मनाई। पुलिस का पहरा लग गया, लेकिन हम लोग मिल के बाहर टोलियों में खड़े बड़े सन्तोष से बातें करते रहे। उस दिन भी अंधा लड़का मिल के सामने घूम-घूमकर गाता रहा लेकिन आज किसीने उससे एक भी पुस्तक नहीं ली। उसने अपनी बारीक, मधुर और प्यारी आवाज का सारा ज़ोर लगा दिया। लेकिन किसी मज़दूर ने एक आना भी ज़ेब से न निकाला, क्योंकि भैया ! अब हम लोग हड़ताल पर थे और जाने यह हड़ताल कै दिन रहे और एक आना एक आना होता है। सुबह और शाम के चने चल सकते हैं। मुझे हंसी आती है, जब कभी लोग यह कहते हैं कि मज़दूर योंही लोगों के बहकाने से आवेश में आकर हड़ताल करते हैं। उन्हें

क्या मालूम कि मज़दूर मुर्ग और पुलाव खाकर हड़ताल नहीं करते । वे चने खाकर और मुट्ठियां भींचकर और अपने दिल का लहू खुश्क करके हड़ताल करते हैं। वे अपने बच्चों को फ़ाके से मरता हुआ देखते हैं। अपनी पत्नियों को पानी में घास उबालते हुए देखते हैं और दृष्टि नीची करके और दांत पीसकर मिल के दरवाज़े पर जा खड़े होते हैं और भीतर नहीं जाते । कई निर्बलताएं, कई सौ प्रकार के लालच, और छल उन्हें धकेल-धकेलकर भीतर भेजना चाहते हैं, फिर भी वे भीतर नहीं जाते । मैं तुमसे सच कहता हूं, गोली खाना आसान है, हड़ताल करना आसान नहीं ।

हां, तो जब हड़ताल के पहले दिन अंधा लड़का गाते-गाते थक गया तो सामने के पुल के पास डाक डालने के बम्बे का सहारा लेकर खड़ा हो गया । मैं देख सकता था कि वह बिल्कुल रुआंसा हो रहा है। हमारी तरह वह भी कम परेशान न था, शायद सुबह से उसने कुछ नहीं खाया था। मैं टहलता-टलहता उसके पास चला गया ।

मैंने पूछा, "आज कितनी पुस्तकें बिकीं ?"

"एक भी नहीं ।"

मैंने कहा, "अब यहां नहीं बिकेंगी?"

"क्यों ?"

"यहां हड़ताल हो गई है ।"

"हड़ताल क्या होती है ?"

"मज़दूर काम पर नहीं जाते ।"

"क्यों नहीं जाते, क्या वे बीमार हैं?"

"बीमार नहीं हैं, लेकिन एक तरह से बीमार ही समझो। अगर घर में चैन न होगा, शरीर पर कपड़ा न होगा, पेट में रोटी न होगी तो आदमी काम कैसे कर सकेगा ?"

वह अपने सूखे होंठों पर जिह्वा फेरते हुए बोला, "आज एक पुस्तक भी नहीं बिकी ।"

"आज हड़ताल है ।" मैंने कहा ।

"और उस दिन भी एक पुस्तक नहीं बिकी थी, जिस दिन कहते हैं आज़ादी आई थी, पन्द्रह अगस्त ! सब लोग खुशी से नाच रहे थे ।"

"तुम क्यों नहीं नाचे ?"

"मैं भूखा था ।"

मैं चुप हो रहा, थोड़ी देर बाद मैंने जेब से एक आना निकालकर उसे दिया । उसने नहीं लिया, बोला :

"मैं अंधा हूं, भिखारी नहीं हूं । मेरा बाप भी इसी मिल में नौकर था । वह ऐक्सीडैंट में मारा गया था ।"

"क्या हुआ था ?"

"फ़ोरमैन की गलती से मशीन में कुचला गया । बाद में पता चला कि गलती उसकी अपनी थी ।"

मैंने कहा, "तुम यह एक आना ले लो ।"

वह बोला, "नहीं, मैं भीख नहीं मांगूंगा ।" उसके होंठ ज़ोर से भीतर को भिंच गए ।

मैं उसके पास से चला आया ।

हड़ताल के दूसरे दिन, तीसरे दिन, चौथे दिन मैं उसे बरबार आते देखता रहा, वह हाथ में पुस्तकें लिए गाता रहा, किसीने उससे पुस्तक नहीं ली । वह जब गा-गाकर थक गया तो डाकखाने के बम्बे के पास सहारा लेकर खड़ा हो गया ।

मैंने उससे कहा, "आजकल यहां हड़ताल है । किसको फ़िल्म के गानों में दिलचस्पी होगी ? तुम कहीं और जाओ ।"

वह बोला, "कहां जाऊं ? मुझे रास्ते नहीं आते ।"

मैंने कहा, "फ़ोर्ट जाओ, वह शरीफ़ों और मालदारों की बस्ती है । वहां तुम्हारी पुस्तकें बहुत बिकेंगी । आओ, मैं तुम्हे स्वयं वहां पहुंचा आता हूं ।"

मैं उसे फ़ोर्ट में पहुंचा आया ।

लेकिन दूसरे दिन वह फिर वापस चला आया । मिल के सामने बोला,

"वे लोग अंग्रेज़ी फ़िल्में देखते हैं। देसी फ़िल्मों के गाने रेडियो पर सुन लेते हैं। वे लोग मेरी पुस्तक नहीं लेते।"

इतने में लाल झण्डेवाले आ गए। उनके साथ दूसरी मिलों के मज़दूर भी थे। हम सब लोग मिल के दरवाज़े के सामने खड़े होकर नारे लगाते रहे, और फिर क्रान्ति के गीत गाने लगे। गाते-गाते मैंने देखा कि वह अन्धा लड़का भी डाकखाने के बम्बे से चलकर हमारे समूह में आ गया है और धीरे-धीरे हमारा गीत गाने का प्रयत्न कर रहा है। गाते-गाते जब उसकी धुन उसे अच्छी तरह याद हो गई तो वह सबसे ऊंचे स्वर में गाने लगा और हम सब उसके पीछे दुहराने लगे। उसकी आवाज़ बड़ी मधुर और सुरीली थी। बड़ा आनन्द रहा। जब गीत समाप्त हो गया तो हम सबने उसे शाबाशी दी। मज़दूरों ने उसे कन्धे पर उठा लिया और लाल झण्डा उसके हाथ में थमा दिया, और बोले :

"यह चाचा फ़ज़लू का बेटा है। फ़ज़ल उर्रहमान इसी मिल में काम करता था। यह चाचा फ़ज़लू का बेटा है।"

मैंने देखा, अन्धे का चेहरा प्रसन्नता से चमक रहा था। जब सब चले गए तो उसने कांपते हुए स्वर में मुझसे कहा :

"यह गीत मुझे बहुत पसन्द आया।"

मैंने कहा, "यह हमारा सुर्ख गीत है।"

वह बोला, "इस झण्डे का रंग कैसा है?"

"सुर्ख।"

"सुर्ख रंग कैसा होता है?"

मैंने कहा, "तुम क्या समझोगे? तुमने कभी सुर्ख रंग देखा ही नहीं। जैसे आदमी का लहू होता है। यह हमारे मज़दूरों की मेहनत का रंग है।"

वह देर तक झण्डे पर हाथ फेरता रहा, फिर बोला :

"अब मैं इस रंग को नहीं भूलूंगा।"

"कैसे?"

वह हंसा, "यह नहीं बताऊंगा।" फिर कुछ देर के बाद कहने लगा,

"वह गीत बहुत अच्छा था। मेरा जी नहीं चाहता अब ये दूसरे गीत गाने को। तुम्हारे पास कोई ऐसा ही और गीत भी है ?"

मैंने इधर-उधर देखा और फिर धीरे से कहा, "किसीसे कहना नहीं, मैं भी गीत लिखता हूं। मगर वे बड़े ऐसे होते हैं, मैं किसीको दिखाता नहीं हूं।"

वह बोला, "तुम गीत लिखो, मैं गाऊंगा। बस ऐसे ही लाल-लाल गीत लिखना।"

रात मैंने एक भद्दा-सा, ख़ुरदरा-सा, चपटा-चपटा-सा गीत लिखा। बड़ी मुश्किल से लिखा, मगर दिल से लिखा। इस गीत में मैंने अपने दिल का सारा दर्द, अपनी पत्नी की सारी विपदा, अपने बच्चे की सारी की सारी भूख डाल दी और फिर मैं यह नंगा-प्यासा भूखा गीत लेकर अपने अन्धे मित्र के पास गया और उसने अपनी अन्धी आत्मा की सारी ज्योति और अपने अंधकारमय संसार की सारी घुटन और अपने अंधकार का सारा प्रकाश उसमें डाल दिया, और गीत एक तलवार बन गया और जब अंधे लड़के ने उसे गाया तो हजूम जैसे सोते से जाग उठा और जैसे हज़ारों तलवारें नंगी होकर मिल के दरवाज़े पर नृत्य करने लगीं और रक्षकों के मुंह फर्क होते गए और हम लोग बढ़ते-बढ़ते बिलकुल मिल के दरवाजे पर आ गए; और मैनेजर ने फौज के बुलाने के लिए टैलीफ़ोन किया।

ख़ैर, हम लोग वापस चले गए।

इसी प्रकार कई दिन व्यतीत हो गए। हमारी आशाएं टूटती जा रही थीं और बहुत-से मजदूर काम पर वापस जाने की सोच रहे थे क्योंकि मिल-मालिक उसी प्रकार अपनी हठ पर अड़ा हुआ था; और जो लोग बीच में समझौता कराने आए थे वे हमें डांटते थे। और समाचारपत्र भी बड़े व्यक्तियों के थे, वे भी हमें डांटते थे और हमारी कोई सहायता नहीं करता था, उपदेश सब देते थे। इसी परेशानी में दिन निकलते जा रहे थे और कोई फैसला न होता था, और आज बहुत-से मजदूरों ने निश्चय कर लिया कि वे कल से काम पर चले जाएंगे। हमारे समझाने पर भी वे लोग नहीं माने।

मैं बहुत उदास था। मेरा अंधा मित्र भी बहुत उदास था, हम लोग धीरे-धीरे मिल से चले। वह बोला :

"कल से मज़दूर काम पर जाएंगे ?"

"हां," मैंने दबे स्वर में कहा।

"तुम भी जाओगे ?" उसने पूछा।

"नहीं।"

"तो फिर क्या करोगे ?"

मैं चुप हो रहा।

वह बोला, "उन्होंने सुर्ख झण्डा मेरे हाथ में दिया था !"

मैं फिर चुप रहा।

वह बोला "कल के लिए कोई गीत लिखोगे ? कोई बहुत अच्छा-सा गीत।"

मैं फिर भी चुप रहा।

हम फूलों की एक दुकान के सामने से निकल रहे थे। वह चुपचाप खड़ा हो गया। देर तक खड़ा रहा। फिर बोला :

"ये फूल मुझे बहुत पसंद हैं। इनकी सुगन्ध कितनी भीनी-भीनी और प्यारी होती है ! जी चाहता है कोई मुझे बहुत-से फूल दे दे —ढेर के ढेर।"

मैंने कहा, "मेरी जेब में दो पैसे हैं।"

वह बोला, "आगे चलो, चने खाएंगे।"

दूसरे दिन हम दोनों प्रातःकाल ही मिल के दरवाज़े पर पहुंच गए। उसके हाथ में झण्डा था और होंठों पर नया गीत। इससे अच्छा गीत मैंने आज तक नहीं लिखा था। इससे अच्छा गीत उसने आज तक नहीं गाया था—जैसे यह गीत हम दोनों की अन्तिम कोशिश था। जैसे चारों ओर अन्धकार फैल जाए और प्रकाश की अन्तिम किरण बुझने से इन्कार कर दे। जैसे दिन-रात का

परिश्रम संगीत की नदी बन जाए और कोई उसे पार न कर सके। जैसे रोज़-रोज़ के फ़ाक़े ईंटें चुन-चुनकर मिल के दरवाज़े पर दीवार खड़ी कर दें और भीतर जाने वालों का रास्ता रोक दें। कोई भीतर नहीं गया। जो भी आया संगीत के सागर में मिलता चला गया। मिल के दरवाज़े खुले थे लेकिन कोई भीतर नहीं गया। फिर काम बिगड़ता देखकर मिल-मालिक के पिट्ठुओं ने हमपर आक्रमण कर दिया और हमने आक्रमण का उत्तर दिया। और भगदड़-सी मच गई और मैंने अन्धे लड़के को गिरते हुए देखा और उसके हाथ से एक अन्य मज़दूर को झण्डा उठाते हुए देखा, और मैंने भागकर अंधे लड़के को अपनी बांहों में उठा लिया और उसे भीड़ से निकालकर बाहर ले आया और अस्पताल की ओर भागने लगा।

अस्पताल में उसकी खाट के गिर्द बहुत-से मज़दूर एकत्र थे, क्योंकि डाक्टर ने कह दिया था कि वह बच नहीं सकता, एक-आध घंटे का मेह-मान है।

वह बोला, "मिल के भीतर तो कोई नहीं गया ?"

मैंने कहा, "नहीं।"

"कोई नहीं ?"

"एक भी नहीं।"

उसने संतोष का श्वास लिया। धीरे से बोला :

"उन्होंने झंडा मेरे हाथ में दिया था !"

मेरी आंखों में आंसू आ गए। नर्स उसका सिर थपकने लगी। अंधे लड़के के नथने हिलने लगे, बोला :

"कितनी अच्छी सुगन्धि आ रही है, किसके पास फूल हैं ?"

नर्स ने लवैंडर लगा रखा था। वह कुछ कहना चाहती थी। मैंने उसे रोक दिया और एक साथी के कान में तुरन्त फूल लाने को कहा। वह जल्दी से बाहर भाग गया।

"किसके पास फूल हैं ?" उसने फिर पूछा।

मैंने कहा, "फूल बाहर दुकान पर हैं। मैंने मंगवाए हैं, तुम्हारे लिए।"

वह चुप हो रहा। साथी ने चम्बेली के फूलों का एक बड़ा गुच्छा लाकर मेरे हाथों में दिया और मैंने अपने अंधे मित्र के कांपते हुए हाथों में थमा दिया।

चम्बेली के चमकते हुए श्वेत-श्वेत फूल उसके निर्बल हाथों में थे।

वह बोला, "कितने अच्छे फूल हैं ये! इनकी भीनी-भीनी सुगन्ध, इनका रंग!"

वह चम्बेली की कोमल-कोमल पत्तियों पर हाथ फेरने लगा। एकाएक उसका चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा।

बोला, "सुर्ख फूल हैं न ये? सुर्ख! सुर्ख!!"

नर्स कुछ कहना चाहती थी, मैंने उसे रोक दिया और रुंधे हुए कण्ठ से बोला :

"हां छोटे भैया! इनका रंग बिलकुल सुर्ख है, बिलकुल सुर्ख है।"

उसने फिर पूछा, "इतना सुर्ख जितना हमारा झंडा? जितना आदमी के दिल का लहू?"

"हां," मैंने कठिनता से अपने आंसू पीते हुए कहा :

"हां, छोटे भैया, ये फूल बिल्कुल सुर्ख हैं।"

"बड़े अच्छे फूल हैं ये," वह आनन्द का श्वास लेकर रुक-रुककर बोला "बड़े अच्छे फूल हैं ये! ये सुर्ख-सुर्ख फूल···मेरा जी चाहता है मैं इन सुर्ख-सुर्ख फूलों में छिप जाऊं।"

फूल उसने अपने गाल से लगाए और आंखें बन्द कर लीं—सदैव के लिए।

वार्ड में किसीने सिसकी भरी। किसीकी आंख से एक आंसू ढलका कोई मुंह छिपाकर रोने लगा।

वह आज हममें नहीं है। मैं आज उसकी कब्र पर से होकर आया हूं।

उसकी कब्र कच्ची है और वीरान है और उस पर कोई फूल नहीं है ; और आज, जब मैं उसकी कब्र देखने गया था, तो उसने मुझसे पूछा :

'भैया ! ये सुर्ख-सुर्ख फूल मेरी कब्र पर कब खिलेंगे ?'

और मैंने कहा, 'छोटे भैया ! आज एक जगह मैं तुम्हारी कहानी सुनाने जा रहा हूं। उनसे यह प्रश्न ज़रूर पूछूंगा।'

एक दिन

बहुत ही सुन्दर दिन था। अभी पौन न फटी थी और आकाश पर क्षितिज के चारों ओर किनारे-किनारे पर्वतों की स्याह नुकीली चोटियों के ऊपर बदलियों के लच्छे उलझे हुए थे। पश्चिम में बदलियों की लहरें गहरी होती-होती एक ठोस गुबार बन गई थीं; और पर्वतों की कंवारी चोटियां इस स्याह गुबार में यों उभरी हुई थीं जैसे स्याह अंगिया में यौवन के कमल। और फिर बादलों के स्याह लच्छे इस गुबार के उत्तर-पूर्वी कोने से उठते हुए दूरपूर्व तक फैलते गए थे। फैलते गए और लचकीले और चमकीले होते गए; और सूर्य के उद्गम के पास जाकर बिल्कुल अदृश्य हो गए। इस उद्-गम के पास आकाश इतना स्वच्छ था कि सूर्य पर दीपक की लौ का भ्रम होता था। दीपक बिस्तर के किनारे जल रहा था और रात अपने केश फैलाए अभी तक सो रही थी और दीपक का उजाला बढ़ता जा रहा था। पहले तो चोटियों के शबनमी होंठ बादलों से अलग हुए। कैसी विवशता थी उनमें, जैसे वे होंठ उस दीर्घ चुम्बन से पृथक् न होना चाहते हों! फिर एक श्वेत सुनहला प्रकाश उद्गम से उबलकर आकाश के चेहरे पर फैल गया। जैसे रात सोते में मुस्करा उठे। कितनी हलकी, कोमल-सी मुस्कान थी वह! फिर कहीं से एक पक्षी चहचहाया—कू कू, कू कू! कुकू था और मीठे, मद्धिम निद्रित स्वर में बोल रहा था—कूकू, कूकू! जैसे सोया हुआ बच्चा जागते समय कुनमुनाए—क, कू! बगलों की डार खुली कैंची के रूप में उड़ानें भरती हुई चुपचाप गुज़र गई। फिर एकदम बहुत-से पक्षी चहचहा उठे। एक कव्वा चीखा, एक गुलदुम गाई, एक तीतर बोला, एक खटबढ़ई ने ताल दी और फिर चारों ओर पक्षियों की चहचहाहट ही सुनाई

देने लगी और रात के केशों को दीपक की लौ ने छू लिया और केश फिस-लते-फिसलते बिलकुल पश्चिम में चले गए और फिर एकदम उजाला हो गया।

लेकिन यह सूर्य का उजाला न था। सूर्य के आगमन से पहले का प्रकाश था। जब रात जागती है और प्रात: हौले-हौले पगों से पलंग के पास आ जाती है और लजाई हुई दृष्टि से सोए हुए दिन को देखती है। उसकी बड़ी-बड़ी स्याह आंखें सारे आकाश पर थीं, और सारी धरती पर थीं, और उसकी मदमाती मुस्कान सारे विश्व पर थी, और अब आकाश कांची की तरह कोमल, नीला और निर्मल था और उजाले में ऐसा कम्पन था मानो यह कांच अब गिरा कि अब गिरा; और धरती छन्न की सी आवाज़ की प्रतीक्षा में थी। कांच का स्तर इतना कोमल था कि भय था कहीं उड़ते हुए बगलों और कव्वों और गुटारियों की तेज़ नुकीली चोंचें उसमें छिद्र न कर दें और कहीं यह उजाला छिद्रों से बहकर समाप्त न हो जाए। फिर जैसे यह कांच और ऊपर उठ गया और वसंत की रेखा पहाड़ों की चोटियों के ऊपर-ऊपर चारों ओर फैल गई। और उस श्वेत उजाले में किसीने केसर की हवाई बिखेर दी; और यह हवाई लहराती हुई, बलखाती हुई, अपने, आपको उस उजाले में घोलती हुई क्षितिज के किनारे-किनारे चारों ओर फैल गई।

गांव अभी सो रहा था। चश्मे का पानी एक ही गति से बह रहा था। लकड़ी के नल से लेकर पत्थर की शिला तक पानी की एक रेखा-सी खिची हुई थी। झाड़ियों पर धुंध छाई हुई थी। वृक्ष धुंध में लिपटे हुए थे। उनके तनों पर ओस की बूंदें धीरे-धीरे सरक-सरककर एक दूसरे में विलीन होती हुई नीचे बहती जा रही थीं और मार्ग के नीले पत्थर उनके पानियों से धुल गए; और पशुओं के क़दमों से दबी हुई धूल सेराब हो गई और दिन भर के परिश्रम की प्रतीक्षा करने लगी। सारी धरती सुख की सांस ले रही थी और यह सांस एक उजले-उजले धुएं के रूप में वातावरण पर छाई हुई थी।

घर सो रहा था। घर के पीछे चीड़ के बृक्ष पर घास का गाढ़ा रचा हुआ था; और उसके नीचे पशुओं के बांधने का कोठा था। कहीं कोई आवाज़ न थी। बाहर दालान में दादी कम्बल ओढ़े सो रही थीं। जब चीड़ के वृक्ष पर रतगला चहचहाया और घर के सामने आड़ू के पेड़ पर खटवढ़ई ने खटखट शुरू की तो दादी ने करवट बदलकर खांसना शुरू कर दिया :

"बख़तियार ! बख़तियार बेटा, फज़र (सुबह) हो गयी।"

"ऊहं," कोई दूर अपनी चारपाई पर सरका। फिर खर्राटे भरने लगा।

"कैसी ज़ालिम नींद है ! पशु हांडी में भूखे मरे जा रहे हैं और ये सब लोग सो रहे हैं। अरे बख़तियार ! बख़तियार बेटा ! फज़र हो गई।"

"बॉ," कोई दूर बिस्तर पर डकारा।

"बेगमां, बेगमां तू ही उठ जा।"

"आंयें, ईं, ऊं," बेगमां अपने गरम-गरम बिस्तर में कसमसाई और उसने अपने दूध-पीते बच्चे को छाती से लगा लिया। बच्चा मज़े से दूध पीने लगा और बेगमां को और भी गहरी नींद आ गई।

"मिरजानी बेटी ! ओ फ़िकरू, अरे कोई तो उठे ?"

मिरजानी का सिर खुला था। उसका मुंह भी खुला था और उसकी कमीज़ भी इतनी खुली थी कि गरदन के नीचे ऊंची घाटियों के बीच की गहराई अपनी आश्चर्यजनक सफ़ेदी, कोमलता और कांच की सुन्दरता लिए नज़र आ रही थी। जैसे आकाश पर उजाला था, ऐसा ही उजाला मिरजानी ने अपनी कमीज़ के भीतर छिपा रखा था और उसके हाथ भी बेधड़क खुले पड़े थे और वह अपना सौंदर्य, अपना यौवन और अपने अल्हड़पन से बेख़बर सो रही थी। दादी अम्मां देर तक उसे घूरती रहीं और फिर उन्होंने क्रोध से उसे एक लात जमाई और मिरजानी हड़बड़ाकर उठ बैठी।

"क्या है, क्या है ?"

"कैसी बेखबर सोती है, पिंडा भी नहीं छिपा सकती कमज़ात ?"

"तो मैं क्या करूं दादी अम्मां ?" मिरजानी ने अपनी छाती पर कमीज़ के फटे हुए कोनों पर हाथ रखते हुए कहा।

"चल उठ, मटकी धोकर दूध दुह ला।"

मिरजानी लड़खड़ाती-सी उठी। उसके हाथ के कंगन बज उठे। उसके बालों में कांच की सुरियां एक दूसरे से टकराईं और उसका संगीत मिर-जानी की मुस्कान को चूमता हुआ वातावरण में बिखर गया।

"हाय दादी अम्मा, तुम तो सुबह-सवेरे ही जगा देती हो, इतना अच्छा सपना देख रही थी ?"

"सपने देखती है, रात को कम खाया कर। चार-छः रोटियां मकई की खा जाएगी और सपने नहीं आएंगे तो क्या फ़रिश्ते आएंगे रात को, कम्बख्त ?"

मिरजानी ने दालान के थम से ठोकर खाई। फिर संभालते-संभालते भी मटकी उसके हाथ से गिर गई और वह दादी अम्मां की ओर देखकर आंखों में आंसू लाकर कहने लगी, "मटकी टूट गई।"

"यह तो मैं भी देख रही हूं। खुदा मुझे किसी जुलाहे से ब्याहे और तू ज़िन्दगी भर सूत की अंटियां घुमा-घुमाकर मर जाए। तुझे मौत भी नहीं आती, चल, वह दूसरी मटकी ले और भाग।"

मिरजानी बुड़बुड़ाती, बकती-झकती, घर के पीछे पशु-गृह की ओर चली गई।

दादी ज़ोर-ज़ोर से खांसने लगी लेकिन कोई नहीं उठा। केवल गोद का बच्चा दादी अम्मा की तेज़ खांसी से डरकर चिल्लाने लगा और बेगमां उसे थपक-थपककर सुलाने लगी और दादी अम्मां ने चीखकर कहा, "अब कब तक अपने जिगर के टुकड़े को पुचकार-पुचकारकर सुलाएगी। क्या सूर्य चढ़े घर में आग जलाएगी ? बेगमां ! जब मैं तेरी उम्र की थी तो···"

बेगमां बच्चे को उठाए-उठाए बाहर आई, "ओह! सचमुच फ़जर हो गई।" उसने हैरान होकर उस उजाले की ओर देखा, "अब सूर्य निकला ही चाहता है। बच्चे को ले लो अम्मां, मैं चश्मे से पानी ले आऊं" उसने घड़ा उठाया और चश्मे की ओर भागी।

"अरी भागती क्यों है, अभी दो महीने तुझे बच्चा जने नहीं हुए,

धीरे-धीरे चल।" दादी ने क्रोध से कहा और बेगमां ने हंसकर अपने पग हौले कर लिए। "अल्लाह समझे आजकल की लड़कियों से। अब यह पांचवां बच्चा है इसका, मगर अकल अभी तक नहीं आई। अल्ला जाने कब आएगी। ऊं ऊं सो जा, मेरे नन्हे बख़तियार के नन्हे पूत।"

नन्हा बखतियार, जिसकी आयु उस समय चालीस वर्ष से कुछ कम न होगी, अभी तक चारपाई पर पड़ा खर्राटे ले रहा था। कम्बल का एक सिरा उसके होंठों के पास फड़क रहा था और जब बख़तियार श्वास बाहर निकालता तो यह सिरा ऊपर उठ जाता और जब बख़तियार श्वास भीतर खींचता तो यह सिरा उसके होंठों के भीतर घुस जाता। दादी अम्मां देर तक बच्चे को झुलाती हुई अपने बेटे बख़तियार को देखती रहीं। बख़-तियार के चेहरे पर दाढ़ी थी, जिससे उसके गालों के गढ़े छिप गए थे। बखतियार की आंखों के कोनों पर झुर्रियों के दायरे बनने शुरू हो गए थे और उसके माथे की रेखाएं गहरी होती जा रही थीं, लेकिन दादी अम्मां को बख़तियार उसी तरह एक नन्हा बच्चा नज़र आ रहा था। वही बचपन का भोलापन, लड़कपन की शरारतें, बख़तियार की शादी, उसकी बलवान बांहों का सहारा जब दादी अम्मां नाले में गिर पड़ी थीं।

"बच्चे, उठ!" दादी अम्मां ने प्यार से कहा।

"ऊं हूं" बख़तियार ने करवट बदल ली।

"अबे, उठता है कि नहीं ?"

बख़तियार ने इस ज़ोर से श्वास खींचा कि कम्बल का टुकड़ा तालू तक घुस गया और वह 'आख थू' करता हुआ अपनी आंखें मलने लगा।

दादी ने बच्चे को पलंग पर लिटा दिया और झाड़ू हाथ में लेकर दालान साफ़ करने लगीं। दो मुर्गियां 'कुड़-कुड़' करती हुई दादी अम्मां के निकट आईं। दादी ने क्रोध से झाड़ू दिखाई तो वे 'कुकड़ूं कड़ू' करती हुई बाहर भागीं। मुर्गे ने उनसे कहा, "क्या लेने गई थीं उस बुढ़िया झुलसाऊ के पास ? रोकने पर भी उधर ही जाती हो।" मुर्गे ने बड़ी मुर्गी को ठंगते हुए कहा और बड़ी मुर्गी भागी और छोटी मुर्गी भागी और मुर्गा उन

दोनों के पीछे भागा और वे भागते–भागते जंगली बेरों के झुंड में जाकर दाना चुगने लगे।

बच्चा रोने लगा, अभी अंगूठा चूस रहा था और अभी इसी तरह ढाड़ें मार-मारकर रोने लगा जैसे उसपर विपत्तियों के पहाड़ टूट पड़े हों। फ़िकरू की निद्रा भंग हो गई।

"दादी अम्मां, इसे चुप कराओ।"

"नहीं, तुम पड़े–पड़े सोते रहो ; जब दिन निकलेगा तब उठना। कैसे किसान हो तुम ! कहते हैं दिन भर कमाई करते हैं फिर भी कुछ नहीं मिलता। अरे मिले कैसे ? अल्लाह जाग गया, सूर्य निकलने को आया, मगर तुम्हारी नींद है कि खतम होने का नाम ही नहीं लेती। ऐसी हराम की कमाई में खुदा कैसे बरकत दे ? खुदा बख्शे, जब बख़्तियार का बाप ज़िन्दा था तो तीसरे पहर मुर्गे की पहली बांग के साथ उठ जाता था और हल लेकर खेतों में चला जाता था। धान के मौसम में भी घुटने-घुटने ठंडे शीत पानी में खड़ा पनीरी लगाता रहता; और एक तुम हो, न काम आए न मौत आए।"

फ़िकरू दादी की कड़वी बातें सुनता-सुनता उठ बैठा और जंभाई लेकर निश्चिन्तता से मुस्कराने लगा। यद्यपि उसका नाम फ़िकरू था, लेकिन संसार भर में उसका-सा बेफ़िक्र व्यक्ति कहीं न होगा। उसके माता-पिता बचपन में मर गए थे और उसे दादी अम्मां ने अपने बेटे की तरह पाला था। क़द दर्मियाना, लेकिन शरीर गठा हुआ था। मज़बूत हाथ-पांव और मज़बूत चौड़ी छाती, और मज़बूत जबड़े। वह उस घर का हाली था, और दस किसानों जितना काम करता था; और काम करते-करते गाता भी था, और गाते-गाते नाचने भी लगता, और नाचने के बाद हंसने लगता और हंसते-हंसते फिर काम में मग्न हो जाता।

बख़्तियार हल उठाए बाहर निकला, "सलाम अम्मां!" उसने आदर-पूर्वक कहा और एक नज़र फ़िकरू पर डाली।

फ़िकरू ने कहा, "तुम चलो, मैं गोडी का सामान लेकर और मवेशियों

को चारा खिलाकर आता हूं। जाने आज इतनी देर तक क्यों सोता रहा ?"

"तुमसे हज़ार बार कहा है, कम खाया करो, आखिर अपने घर का अनाज है कहीं खतम तो न हो जाएगा। अपने घर की ज़मीन है, उसे कहीं चोर तो नहीं उठाकर ले जाएगा। ऐसे भुखमरे की तरह आठ-दस रोटियां रात को खा जाता है जैसे फिर कभी रोटी न मिलेगी।"

फ़िकरू ने कहा, "बहुत भूख लगी है अम्मां !"

"जा, जा, काम कर।"

फ़िकरू अपना खुरदरा जबड़ा सहलाता हुआ उठा और उठकर आंगन से बाहर तल्ले में नाशपाती के वृक्ष के नीचे पेशाब करने बैठ गया।

दादी चीखी, "अरे तुझपर अल्लाह की मार ! तुझे लाख बार कहा है, फूलदार पेड़ है, वहां मत बैठा कर। उठता है कि मारूं झाड़ू—हर बार, हर रोज़..."

फ़िकरू उसी समय वहां से उठा और आगे सुबंलू की झाड़ियों के सामने बैठ गया। पेशाब करके हंसता हुआ उठा तो बाहर मटके से पानी लेकर हाथ धोने लगा, "अम्मां, कुछ टुक्कड़ (रोटी का टुकड़ा) दे दे। तेरे सिर की क़सम, बड़ी भूख लग रही है।"

"बेग़मां अभी चश्मे से पानी लाती होगी, आने दो, फिर टुक्कड़ और लस्सी देती हूं। जा तब तक काम कर। बेचारी मिरजानी अकेली सब ढोरों को कैसे संभालेगी !"

बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था। बेगमां घड़ा उठाए सामने से चली आ रही थी। पांच बच्चों की मां होने के बाद भी चाल में यौवन की शान थी और कमर में हिरनी की नज़ाकत थी, और गालों में गाज़े के बिना भी सुर्खी थी, और काजल के बिना भी आंखें बड़ी-बड़ी और स्याह थीं; और छाती पहाड़ की चोटियों की तरह उभरी-उभरी। बच्चों को रोते देख वह होंठ कटकटाने लगी। घड़े का पानी छलककर केशों से होता हुआ गालों पर आ गया था और उसके गाल क्रोध से चमक रहे थे; और उसका श्वास

तेज़-तेज़ चल रहा था। बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था, अकेला, खाट पर और दादी अम्मां भीतर दूसरे बच्चों को जगा रही थीं, खटिया उठा रही थीं। बच्चे चिल्ला रहे थे, रो रहे थे और हंस रहे थे; और दादी अम्मां के गिर्द घूम रहे थे,। और मुर्ग कुड़कुड़ा रहे थे, और बकरियां मिनमिना रही थीं, और पशुगृह में गाएं डकरा रही थीं। बेगमां ने आते ही घड़ा सिर से उतारा और रोते हुए बच्चे को छाती से लगा लिया।बच्चे दादी अम्मां के गिर्द नाचते हुए बाहर आ गये। बेगमां ने लालभभूका होकर अम्मां की ओर देखा।

"बच्चा अकेला पड़ा था?"

"हां," दादी फुफकारी।

"खाट पर पड़ा था, रो रहा था अकेला?"

"सुन लिया!" दादी चीखीं।

"अगर इसे कोई उठा ले जाता तो ?"

"हां बगियाड़ (भेड़िया) आ रहा था इसे उठाने के लिये यहां!"

"हाय, इसे बगियाड़ क्यों ले जाए ? बगियाड़ ले जाए तेरे जैसी बूढ़ी खखियाड़ को," बेगमां ने झल्लकार कहा।

दादी चिल्लाई, "मैं बूढ़ी हूं, खखियाड़ हूं, तू बड़ी जवान है, पांच बच्चों की मां है और अभी तक सोलह वर्ष की कुंवारी की तरह मटक-मटक कर चलती है, और दीदे घुमा-घुमाकर यों चारों तरफ ताकती है जैसे सारा गांव तुझीपर मरता है! उस दिन जाफ़रअली से क्या बातें हो रही थीं चश्मे के किनारे ?"

"हाय अम्मा ! क्या बुहतान लगा रही हो ? चाचा जाफ़रअली तो तुम्हारी उमर का है। वह तो मुझसे मेरे बाल-बच्चों का हाल पूछ रहा था। बड़ा मैला दिल है तुम्हारा दादी अम्मा !"

"मेरा दिल मैला है और मैं बुड्ढी, खखियाड़ हूं और तू बड़ी हूरपरी है, नेकज़ात है, तेरे बच्चों को खिलाऊं, जगाऊं, तेरे घर को देखूं, दालान में झाड़ू दूं, सबको खाना खिलाऊं और फिर भी मेरा दिल मैला है।" दादी

रोने लगीं।

बेगमां ने आंखों में आंसू लाते हुए कहा, "तुम योंही झगड़ती हो, अम्मां; मैंने तो बच्चे को रोते देखा तो योंही कह दिया। मैं चश्में से पानी ला रही थी, यह बाहर रो रहा था।

"यह बाहर रो रहा था तो मैं कहां मरी जा रही थी, सारे घर को जगाया, झाड़ दी, अब तेरे बच्चों को जगा-जगाकर ला रही थी कि इन मासूम जानों के मुंह में दो टुक्कड़ दे दूं कि तूने तूफान उठा लिया, ऐसी भी क्या प्रलय आ गई।

दादी रोने लगीं। बच्चा रोने लगा। दादी नें झट उसे बेगमां से छीन लिया और रोते-रोते उसे लोरी देने लगी। बेगमां के झमकते हुए आसुओं में मुस्कराहट झलक पड़ी जैसे घूमते हुए भंवर में सूर्य की किरण चमक-चमक जाए!

दादी ने कहा, "जा लस्सी बना दे और टुक्कड़ दे दे सबको।" दादी अम्मां आंगन से निकलकर चीड़ के वृक्ष की ओर चली गईं।

पशुगृह में अभी अन्धकार था और सूखी चरी का कड़वा धुआं आंखों को लग रहा था। मिरजानी ने पशुगृह से गरम-गरम वातावरण में शान्ति की सांस ली। उसने मटकी को बड़े ताक में रख दिया और ढोरों को चारा डालने में लग गई। गायों को चारा डाला, फिर बछड़ों को सहलाया, फिर भैंसों को चारा डाला, बकरियों के बाड़े की ओर गई और सिर खुजलाने लगी। एक बकरी का बच्चा उसे बहुत पसन्द आया। वह देर तक उसे गोद में उठाये चूमती रही। फिर उसे खयाल आया कि उसे दूध दुहना है और उसने मटकी ताक में से उठाई और लेले को बकरी के हवाले किया और बल्ली गाय को दुहने के लिये उसके थनों के पास बैठ गई।

दूध की पहली धारा मटकी में गिरी और मटकी प्रसन्नता से गुनगुना उठी—

धुर, धुर, धां, धां, धुर, धुर, धां, धां, !

ताज़े दूध की धाराएं मटकी में छोटे-छोटे फव्वारों की तरह गिर रही

थीं और जब मटकी आधी से अधिक भर गई तो मिरजानी दूध की धाराओं को अपने मुंह की मटकी में डालने लगी और फिर किसीने उसे अपने बाहु-पाश में ले लिया और दूध की धारा उसकी आंखों में जा पड़ी और चेहरे पर फैल गई। उसने दूध की मटकी ज़ोर से अपनी जांघों में दबा ली और बिना पीछे घूमे कहा, "फ़िकरू, छोड़ दो मुझे।"

फ़िकरू ने कहा, "हम भी दूध की धारें लेंगे।"

"तो इतनी गाय-भैंसें खड़ी हैं, पियो, हमें क्यों परेशान करते हो ?"

"नहीं, हम तो इसी गाय की धारें लेंगे।"

"तो लो।" मिरजानी ने मटकी उठाकर ताक में रख दी और अलग खड़ी हो गई। फ़िकरू उसके निकट खड़ा हो गया। दूध की धार अभी तक मिरजानी के बायें गाल पर बह रही थी। फ़िकरू ने उसका गाल चूम लिया।

"बहुत मीठा है, आहा हा !"

मिरजानी ने उसके मुंह पर एक तमाचा लगाया, "गंवार, वहशी !"

बिजली की सी तेज़ी के साथ फ़िकरू ने उसे पकड़ लिया, उसे अपनी बाहों में भींच लिया और अपने होंठ उसके होंठों पर इस ज़ोर से जमा दिए कि मिरजानी का चेहरा पीछे की ओर ढलक गया और उसके बाल पशुगृह के फ़र्श से जा लगे और उसकी गरदन सुराही की तरह झुक गई, और उसकी बांहें सरकती-सरकती निर्जीव-सी होकर गिर पड़ीं। फिर एकाएक फ़िकरू ने उसे छोड़ दिया और वह गिरते-गिरते बची।

"मैं···मैं···दादी अम्मां को···बेगमां को···" मिरजानी का श्वास रुक रहा था, 'बुलाती हूं···अभी···अभी बुलाती हूं।"

"ख़ुदा के लिए," फ़िकरू लज्जित होकर बोला, "ख़ुदा के लिए···।"

"नहीं मैं तो···ऐ दादी।" फ़िकरू ने झट उसके मुंह पर हाथ रख दिया, "तुझे ग्यारहवीं वाले पीर की कसम।"

"अच्छा, तो वायदा करो कि फिर कभी नहीं।"

"वायदा करता हूं कि फिर कभी नहीं।"

"और वायदा करो, झल्ले पीर के मेले पर मुझे हंसली ख़रीद दोगे।"

"वायदा करता हूं कि झल्ले पीर के मेले पर खरीद दूंगा।"

"क्या ख़रीद दूंगा?" मिरजानी ने संदेह की नजरों से उसकी ओर देखते हुए कहा, "नाम तो लिया नहीं तुमने।"

"यही, एक हंसली खरीद दूंगा तुम्हें।"

"हां!" मिरजानी को जैसे संतोष-सा हो गया, "लो, अब आओ तुम्हें बल्ली गाय की धारें दिलवाती हूं, लेकिन देखो, ऐं!" मिरजानी ने उंगली उठाकर कहा, "फिर शरारत करोगे तो पिटोगे।"

मिरजानी देर तक बल्ली के थनों से दूध की धारें फ़िकरू के मुंह में डालती रही और फ़िकरू देर तक दूध की धारें मिरजानी के मुंह में डालता रहा। कभी यह, कभी वह, और वे देर तक हंसते रहे और बातें करते रहे। बड़ी देर तक दरवाज़े पर खड़ी दादी अम्मां उन्हें देखती रहीं। लेकिन वे दोनों अपने-आपमें मग्न थे। उन्हें दादी अम्मा के आने का पता ही न चला। आखिर दादी अम्मां क्रोध से चिल्लाई, "अल्ला करे तुम्हें मौत आ जाए। मरदूदो, बेशरमो, बेहयाओ, अभी शादी हुई नहीं और पहले ही से ..."

दादी अम्मां बकती-झकती जा रही थीं लेकिन मिरजानी और फ़िकरू ने केवल एक बार घूमकर देखा और फिर मिरजानी भागकर उठी और दूर परे पशुगृह के दूसरे सिरे पर जाकर किसी भैंस का दूध दुहने लगी और इस सिरे पर फ़िकरू सिर नीचा किए दूध दुहने लगा; और दादी अम्मां बकती-झकती रहीं। लेकिन उनकी बातों में जैसे अब कटुता न थी, क्रोध न था। उन गालियों में जैसे एकाएक कहीं से मिठास आ गई थी और फिर मौन संगीत जंगली झरने की तरह फूटकर बह निकला और दादी अम्मां की आंखों में आंसू आ गए; और दादी अम्मां अपने पोते को उठाए धीरे से पशुगृह के बाहर घूम गई; क्योंकि उनकी आंखों में आंसू आ गए थे और जब उन्होंने अपनी आंसुओं-भरी आंखों से आकाश की ओर देखा तो एकाएक झिलमिलाते हुए क्षितिज पर कहीं से सूर्य निकल आया और सारा गांव जाग उठा, और सारी धरती जाग उठी, और सूर्य की कोमल-कोमल दयालू किरणें विश्व के इस कोने तक फैल गईं!

एक गिरजा, एक खंदक

उस दिन मेरे मित्र मुझे ज़बर्दस्ती घसीटकर राज होटल ले गए। राज और ग्रीन बम्बई के सबसे बड़े होटल हैं और क्योंकि होटल नई सभ्यता के मन्दिर हैं इसलिए हर शरीफ़ आदमी छः बजे के बाद यहां नज़र आता है। यों तो मैं भी अच्छा-खासा 'होटल-गर्द' हूं लेकिन राज और ग्रीन में जाना मुझे सदैव विचित्र-सा लगता हैं। कहने को तो ये बम्बई के सबसे बड़े होटल हैं लेकिन जितनी वेश्याएं इन दोनों होटलों में आपको नज़र आती हैं, बम्बई के किसी दूसरे होटल में नज़र न आएंगी। वेश्याएं और दलाल साथ-साथ मेज़ों पर बैठे हुए आपको मिलेंगे। इस मेज़ पर आप काऊस जी दामनगीर का खानदान देखेंगे तो उनकी बगल वाली मेज़ पर आपको वह पोलिश महिला नज़र आएगी जिसका एक फ्लैट तो कोलाबा में है, और एक झोंपड़ा जूहू तट पर; और जिसकी फीस कोलाबा में पचास रुपये है तो जूहू पर सौ रुपया, और ता़ज में तीन सौ से पांच सौ तक। एक ओर प्रिंस मुहब्बत जंग शाहज़ादी कर्रोफ़र के साथ विराजमान हैं तो उनके साथ वाली मेज़ पर अमृतसर वाली अलमास बेगम धरी हुई हैं जिन्होंने लट्ठे के फूलदार पेटी-कोट पर एक दूधिया बनारसी साड़ी पहिन रखी है। साड़ी से ब्लाउज़ तक शरीर नंगा है और बगलों के पसीने से सुगन्धि की लपटें आ रही हैं। बल्कि प्रायः यह भी होता है कि एक ही मेज़ पर राजे और रानियां और वेश्याएं और उनके दलाल और व्यापारी लोग और फ़िल्म-स्टार नज़र आ जाते हैं; अर्थात् एक ही समय में इतनी दुकानें नज़र आ जाती हैं कि तबीयत मालिश करने लगती है। आदमी सोचता है, हम तो आनन्द लेने आए थे, यहां फिर कम्बख्तों ने बाज़ार खोल दिया। हर आदमी झपट्टा मारने

को बैठा है।

जो स्त्री है वह रंग और रोगन से इतनी सुन्दर बनी बैठी है कि उसका स्वाभाविक नारीत्व नष्ट हो गया है। जो पुरुष है वह यों अकड़ा-अकड़ा बैठा है जैसे अभी लांडरी से धुलकर आ रहा है, अर्थात् वह स्वाभाविक सुख-संतोष, ढंग-व्यवहार और सरलता जिनसे सभा की शान पैदा होती है, यहां ग़ायब हैं। ऐसा नहीं है कि मुझे वेश्याओं से कोई घृणा है या यहां शरीफ़ लोग नहीं आते, लेकिन साहब! कोई बात भी तो हो। हर स्त्री ने वही सुर्खी लगा रखी है, वही गाज़ा, वही काजल की लकीर। सारे होटल में घूम जाइए, आपको एक भी ऐसा पुरुष नहीं मिलेगा जिसने दो दिन से शेव न बनाई हो। और बुद्धिमान ऐसे हैं कि वर्षों से मस्तिष्क पर झाड़ियां उगी हुई हैं और कोई उन्हें साफ़ करने की कोशिश नहीं करता। लखनऊ के बहुमूल्य गरारे, पंजाब की स्टाइलिश सलवारें और पारसनों की दूधिया साड़ियां, जो शरीर पर किड लैदर की तरह ऐसी मढ़ी होती हैं जैसे मां के पेट ही से साड़ी बांधकर आई थीं, लेकिन बस, इसके बाद कुछ नहीं। आप किसी विषय पर बात कीजिए (केवल एक विषय को छोड़कर) यदि पारसन होगी तो कहेगी "सूंछे", यू० पी० की होगी तो बड़ी शान से "खूब!" और पंजावन होगी तो मुस्कराकर कहेगी "हला जी!" और इसके बाद आप सिर पकड़कर रोइए, चीख़िए, चिल्लाइए, कुछ नहीं हो सकता। वे लोग कुछ नहीं करेंगे। पुरुष अकड़े बैठे रहेंगे, स्त्रियां अधिक हंसेंगी नहीं (कहीं चेहरे पर कोई सलवट न पड़ जाए), रोएंगी भी नहीं, पेस्टरी को अंगूठे और उसके साथ वाली उंगली से ऐसे पकड़ेंगी जैसे पेस्टरी का टुकड़ा नहीं, केकड़ा खा रही हैं। शैरी का गिलास इस नज़ाकत से उठाएंगी जैसे उसके बोझ से कमर दुहरी हुई जा रही है, और आप उनके पति से मिलिए तो दो मन की लाश होगी। समझ में नहीं आता कि किस संसार के वासी हैं ये लोग! राजनीति, साहित्य और संस्कृति से तो खैर ये लोग अपरिचित हैं ही, परन्तु इनके अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर भी (केवल एक को छोड़कर) इनके मस्तिष्क में बिजली की रौ नहीं दौड़ती,

कनैक्शन नहीं होता। ये लोग अमरीकी और अंग्रेज़ी टाई का फर्क नहीं जानते। जटरबर्ग और जटरम्बा का भेद नहीं जान सकते, एल० जानसन और सीनातरा के गाने का फ़र्क मालूम नहीं। शग़ान और जापानी नकली रेशम की पहचान नहीं। यह भी नहीं जानते कि रेशम का कपड़ा रेशम के कीड़े से तैयार होता है या घोड़े के मुंह से निकलता है। पुरुष हैं कि अपनी पत्नी का नाम भी नहीं बता सकते, और स्त्रियां हैं कि अपने बच्चों की संख्या बताने से लाचार हैं। हां, बुराई आप जिसकी भी चाहें सुन लीजिए।

"हर मैजेस्टी घोड़ी बहुत अच्छी है," आपने कहा, "आज तक कोई रेस नहीं हारी।"

"सूंछे? अरे क्या बात करते हो, यह तो ट्रिक है प्लेअर्ज़ को धोखा देने की, अगली रेश में देखना। मुझे टिप मिला है टिप! (कान में) जंगलदास बकवासा के जौकी ने बताया है; अबके वह हर मैजेस्टी को खैंच लेगा। साले रेस की और बात है। हम तो बम्बई में पांच पुश्त से रेस खेलते आए हैं। लाखों रुपये हार दिए। आई नो इट्स इन्स ऐण्ड आउट्स। (मैं इसके सब भेद जानता हूं।) साला सूं बात करे छे।"

रेस की बात समाप्त हो गई। सामने से एक पंजाबी पायलट गुज़रा। मोटी पारसन ने उसे लोभी नज़रों से ताकते हुए कहा, "फ़ौज में सारे के सारे पंजाबी नज़र आते हैं, मगर एक बात है, जवान और तगड़े ज़रूर होते हैं और सुन्दर और सुसज्जित भी।"

"खूब!" लखनऊ के गरारे ने व्यंग्यपूर्वक कहा और उसके बाद जो चहकना शुरू किया तो दस मिनट तक पंजाबी पायलट को और उसके प्रांत को वह रगेदा वह रगेदा कि बेचारे की पतलून भी उतार डाली!

इसके बाद विषय बदलने के लिए मित्र लोगों ने महारानी शामबहार और उनकी दो जवान लड़कियों को ताका जो अभी-अभी अपने कमरे से निकलकर हाल में प्रविष्ट हो रही थीं। सुन्दर पोशाक, सुन्दर मोतियों के हार, वे तीनों फ़र्श पर इस प्रकार सलीके और रौब से चल रही थीं जैसे वे

स्वयं न चल रही हों बल्कि कोई बैरा उनके क़दमों को तश्तरी में रखकर आगे-आगे ला रहा हो।

हीरे बेचने वाले सेठ घनशामदास जौहरी ने कहा, "महारानी शाम-बहार के कंठ में आप जो हार देख रहे हैं, यह हमारी दुकान का है। साढ़े सात लाख में ख़रीदा है महारानी ने—बड़ी अच्छी हैं महारानी।"

"हला जी," सलवार बोली, 'इसके एडीकांग से पूछिए। बुढ़िया हो गई है फिर भी ऐसे-ऐसे जवान एडीकांग रख छोड़े हैं। मेरा भाई अजीतसिंह इसकी नौकरी छोड़कर चला आया।"

"क्यों ?"

"उसका इसकी लड़की के संग याराना हो गया था,वह जो है ना छोटी वाली, ही ही हो !" वह ज़ोर से हंसी। फिर एक दम मौन हो गई। (अधिक हंसने से चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाती हैं—'मैक्स फ़ैक्टर'।)

ऐसी दो-चार पार्टियां देख चुकने के बाद मुझे तो राज या ग्रीन होटल में जाने का साहस नहीं होता था। लेकिन मित्र पीछा नहीं छोड़ते थे। वास्तव में हम लोग चार बजे से स्कॉच ह्विस्की की तलाश में थे लेकिन कम्बख़्त कहीं से मिलती ही न थी। एक तो लड़ाई का ज़माना, दूसरे ब्लैक मार्केट, तीसरे अमरीकी सिपाहियों का आगमन। बम्बई में सुन्दर से सुन्दर स्त्री मिल सकती थी और वह भी बहुत सस्ती, लेकिन स्कॉच ह्विस्की किसी मूल्य पर न मिलती थी।

"हम राज नहीं जाएंगे, वहां अगर कोई हमारा कर्ज़ख़ाह मिल गया तो, और अगर उसने अपनी हुंडी का तकाज़ा कर दिया तो..."

"अबे कोई नहीं मिलेगा।"

"और अगर वहां वरली वाली भूनेश्वरी मिल गई तो ? वह तो हर रोज़ शाम को वहां जाती है ? कभी किसी कुंवर साहब के साथ, क़भी

किसी अमरीकन के साथ, कभी किसी फ़िल्मी लेखक के साथ। और यदि उसने वह डेढ़ सौ रुपये मांगे, जो उसके हमारी तरफ़ निकलते हैं, तो फिर? और अगर उसने राज ही में चप्पल उतार ली तो; बड़ी छिछोरी घाटन है।"

"अबे तू चलेगा या बातें बनाएगा बैठे-बैठे?"

"और फिर स्कॉच तो वहां भी नहीं मिलेगी। खुद राज में रहने वाले ग्राहकों को नहीं मिलती। बेचारे शहज़ादे और जौहरी और चांदी के सट्टई और राजनीतिज्ञ जिनके हुक्म का सिक्का दुनिया में चलता है—वही आस्ट्रे-लियन ह्विस्की पीते हैं जिससे घोड़े की लीद की बू आती है; या साउथ अफ्रीकन ह्विस्की, जिसे सूंघकर मन्टो की कहानी "मूतरी" याद हो उठती है।"

अबके उन्होंने मुझे कंधों से पकड़ा और उठाकर कार में डाल दिया।

वही हुआ जिसका भय था। न स्कॉच ह्विस्की मिली, न इंगलिश जिन, फ्रैंच शैम्पेन। हमारे साथ की बेचारी स्त्रियों के लिए शैरी तक तो मिली नहीं और ये बेचारी भारतीय पवित्र नारियां देसी गम्लट क्या पीतीं जिससे नशा ही नहीं होता। और जिस चीज़ से नशा ही न हो उसे हमारी शरीफ लज्जावती, सती-सावित्रियां क्यों पीने लगीं? एक तो पैसे खर्च करो और उसपर भी नशा नहीं—अतएव हरएक ने एक-एक गिलास टमाटो जूस का पिया।

बिलकुल उसी समय मिस सुबहान हमारी मेज़ के सामने से गुजर गईं। श्वेत सलवार, कासनी क़मीज, कासनी दुपट्टा, कासनी नाख़ून, कासनी लिपस्टिक, हमारी ओर घूरती हुई गुज़र गईं। मैंने संकेत करना चाहा लेकिन वह बिजली—कासनी बिजली की तरह घूम गईं। मिस सुबहान के बारे में निवेदन है कि उन्हें देखकर मित्र लोगों को चाहे औरत का धोखा

होता हो मुझे सदैव चूहेदानी का धोखा होता है। अब ऐसा क्यों होता है, इसकी व्याख्या मुझसे सम्भव नहीं। बस ऐसा होता है। (बाद में पता चला कि उन्होंने दूसरे दिन मेरा ज़िक्र इन शब्दों में किया, "वह कल राज में बैठा शराब पी रहा था, एक एंग्लो-इण्डियन लड़की के साथ और मैं तो राज में बाल बनवाने गई थी।")

राज से निकलकर हम लोग ग्रीन में आए। यहां दूसरे दर्जे के लोग आते हैं, अर्थात् वे लोग जिनकी वार्षिक आय पचास हज़ार से ऊपर और दो लाख से कम है। प्रकट है यहां वे राजे और राजकुमार नहीं आ सकते जिनकी रियासत का घेरा तीन मील से कम होता है, और इण्टर क्लास में यात्रा करते हुए भी सोचते हैं कि रियासत का खज़ाना इसका बिल कहां से देगा ? इस भारत, स्वर्गपुरी, में अभी तक सैकड़ों ऐसे राजे और रानियां हैं जिनके लिए बम्बई में कास्मोपालीटन होटल ही 'सैवाये' और 'क्लैरिज' से बढ़कर हैं।

ग्रीन में रम मिल सकती थी और सोसन और काट ६६५, और यहां गवानी आरकेस्ट्रा सारी इंग्लिश फ़िल्मों की धुनें बजाया करता था और भारतीय स्त्रियां, गरारे, सलवारें और साये पहने नाच रही थीं और अमरीकी और टामी और स्वदेशी कप्तान अपनी प्रेमिकाओं के साथ इस तरह चिपके हुए थे जैसे उन्हें घोलकर पी जाएंगे। भगवान जाने मानव इतना प्यासा क्यों है ? दिन-रात तो स्त्री-पुरुष का साथ रहता है, इसके बाद भी इतना प्यासा है, इतना थोड़ा दिल है। यह ऐसा निर्लज्ज क्यों है ? और दस मील दूर से कोई स्त्री नज़र आ जाए, वह वहीं खड़ा होकर कुत्ते की तरह हांफना शुरू कर देता है। पहले मैं समझता था शायद यह बेचारा हिन्दुस्तानी ही इस रोग में ग्रस्त है, अब अधिकतर टामियों और अमरीकनों को देखकर खयाल होता है कि यह लानत सारे संसार में है। अर्थात् स्त्री को

देखते ही एक ऐसी 'नंगी भूख' सी चेहरे पर नज़र आने लगती है कि आदमी का जी चाहता कि या तो स्वयं पागलखाने में चला जाए या उन सबको पागलखाने में भेज दे, जहां उन्हें ब्रोमाइड खिला-खिलाकर उनका मानसिक संतुलन ठीक किया जाए। लेकिन कुछ होगा नहीं, यह सब सोचना निष्फल है। मानव अभी तक १०० प्रतिशत जंगली, वहशी और प्रतिक्रियावादी है। वह अभी तक दो प्रकार की भूख बड़ी उग्रता से अनुभव करता है। एक तो पेट की भूख और दूसरी काम-सम्बन्धी भूख। आप उसकी ये दोनों भूखें पूरी कर दीजिए और फिर चाहे उसे गोली मार दीजिए। युद्ध के विशेषज्ञ इसीलिए तो भरती करते हुए इन दोनों बातों को ध्यान में रखते हैं और उसके बाद उन्हें गोली मार देते हैं। यह ऊंचे और गगनचुम्बी सभ्य जीवन की चीख-पुकार सब बकवास है !

ब्रीन होटल के नाचघर में सब लोग या तो शराब पी रहे थे, या यूरिनल में पेशाब कर रहे थे, और हर एक के माथे पर एक शयनगृह का चित्र अंकित था। कम से कम मेरी नज़रों में सैंकड़ों सोने के कमरे खुल रहे थे। तंग कमरे, खुले कमरे, टेढ़े कमरे, बदबूदार कमरे, फ्लैटों के कमरे, बंगलों के कमरे, झोंपड़ों के दरवाज़े या तट की रेत। एक पुरुष, एक स्त्री, एक बोतल, एक पलंग। कितनी तुच्छ है मानव-प्रसन्नता अभी ! छः हज़ार वर्षीय सभ्यता का का शिखर अभी पलंग की ऊंचाई से ऊंचा नहीं हुआ, छः हज़ार वर्ष में सभ्यता तीन फुट से ऊपर नहीं उठी और अभी उसे चांद तक पहुंचना है, तारों को छूना है; ये कवि भी क्या बेकार की सोचते हैं, चांद और तारों तक जा पहुंचते हैं, और वास्तविकता यह है कि जहां तक काम-वासना के शिखर का सम्बन्ध है एक कुत्ते, एक कौकरोच और एक मनुष्य में कोई अन्तर नहीं।

ब्रीन से निराश होकर लौटे तो निश्चय किया कि जूहू चला जाए। वहां एक फ्रांसीसी औरत ने होटल खोला था। वह पहले कोलाबा में अपना धंधा करती थी और जङ्ग का ज़माना तो आप समझिए 'बूम पीरियड' होता है। दो वर्षों ही में उसने इतना कमा लिया कि उसे जूहू पर एक अपना

होटल खोलना पड़ा ।

"वहां स्कॉच ज़रूर मिल जाएगी ।"

मैंने कहा, "अब मुझे तो छुट्टी दो, अब मैं जूहू नहीं जाऊंगा और न स्कॉच पियूंगा और उस फ्रांसीसी चुड़ैल की सूरत देखकर तो मुझे आग लग जाएगी । कमबख़्त ऐसी माहिर नजरों से देखती है, मालूम होता है आपकी जेब के सारे नोट गिन रही है । मैं नहीं जाऊंगा अब कहीं, तुम मुझे यहीं छोड़ दो ।"

"अकेले क्या करोगे तुम ?"

"क्या किसीसे मुलाकात का वक्त आ गया है ?"

"हमारे साथ जो ये लौंडिया है क्या तुम्हें पसन्द नहीं ?,'

मैंने हाथ जोड़, पांव पड़ा, अगले इतवार का वायदा करके उनसे विदा ली । सिर में सख़्त दर्द हो रहा था, इसलिए समुद्र के किनारे हो लिया, और दूर तक टहलता चला गया । टहलता-टहलता 'गेटवे आफ़ इण्डिया' पहुंच गया ।

यहां एक लड़की जिप्सी औरत का सा लिबास पहने गेटवे आफ़ इण्डिया की ऊंची छत के नीचे खड़ी गा रही थी और नाच रही थी, और उसके गिर्द पारसियों, टामियों, अमरीकनों और मध्यम वर्ग के भारतीय विद्यार्थियों का समूह था । लड़की पतली, छरेरी, सुन्दर नैन-नक्श और श्वेत रंग की थी । चमकते हुए दांत, ऊपर स्याह आंखें, बिल्कुल स्याह और बेहद चंचल, शरारत से भरी हुई । और ऊपर काले घुंघराले केश, हर जुल्फ़ एक नागिन-सी लहराती हुई, और नाचते-नाचते मुस्कराते हुए होंठों में कौंध की सी लपक और एकाएक उन जुल्फ़ों का झटक जाना, जैसे संसार पर काली जटाएं छा गई हों ! और स्पेनी गीत में मूरी संगीत का वहशी लहराव ! उस संगीत के क्षितिज पर और उस कामिनी के शरीर में पूर्व और पश्चिम

दोनों मिल गये थे; और जब भी कोई दो विपरीत चीज़ें मिलती हैं, एक नई चीज़ बन जाती है। इस दृष्टि से कारमन बिलकुल नई थी, नई, अछूती, एक अचम्भा !

गीत समाप्त हो गया। संगीत जमकर कामिनी बन गया। नृत्य रुककर यौवन बन गया। कारमन ने अपने हाथ फैलाए और तुतलाते हुए कहा :

"इक पेशा सीनूर !" (अर्थात् एक पैसा, श्रीमान !)

"सीनूर इक पेशा !"

और चारों ओर से सिक्कों की वर्षा होने लगी। एक सिक्का मैंने भी दिया। उसकी पतली-पतली गरम उंगलियां मेरी उंगलियों से टकराकर सिक्का ले गईं—कहीं दूर एक लहर-सी उत्पन्न हुई, कहीं से उसका उत्तर न आया, सिक्का चला गया, लेकिन उत्तर न आया। कुछ विचित्र-सी निराशा थी जैसे सन्तुलन बिगड़ गया हो। एक सिक्का मैंने दिया, एक सिक्का उसने लिया, बात समाप्त हो गई। हो जानी चाहिए थी, लेकिन मुझे अनुभव हुआ जैसे बात समाप्त नहीं हुई। वे उंगलियां बहुत कुछ कह सकती थीं, लेकिन उंगलियों में और नज़रों में परस्पर सम्बन्ध न था और जब तक परस्पर सम्बन्ध न हो, बिजली की लहर उत्पन्न नहीं होती, बीच ही में शार्ट-सरकिट हो जाती है।

मैं टहलते-टहलते आगे बढ़ गया। गेटवे आफ़ इण्डिया से बहुत दूर आगे निकल गया। थोड़ी देर मैंने गेटवे आफ़ इण्डिया और उस जन-समूह को अपने साथ-साथ चलाया, तट की रेत पर, फिर गेटवे आफ़ इण्डिया और वह जन-समूह ग़ायब हो गया। फिर दूर तक कारमन मेरे साथ-साथ तट की लहरों पर चलती रही। फिर वह ऊपर उठकर बादलों में उड़ने लगी, फिर तारों में जाकर ग़ायब हो गई। उसके बाद अंधेरा छा गया और लहरें विचित्र-सा राग गाने लगीं, और तारे पलकें झपक-झपककर मुझे आश्चर्य से देखने लगे, और वायु अपनी शीतलता मेरे नथनों तक लाई और मेरी गरदन के गिर्द घूमने लगी, और मैंने कोट के कालर ऊपर कर

लिए, और मुड़कर घर की ओर हो लिया ।

इक पेशा सीनूर !
सीनूर इक पेशा !!
इक पेशा सीनूर !!!

उसने मुस्कराकर आज भी एक सिक्का मेरी कांपती हुई उंगलियों से ले लिया। आज गेटवे आफ़ इण्डिया आते हुए और कारमन का नृत्य देखते हुए मुझे दसवां दिन था, यही कारमन, यही स्पेनी संगीत, यही गेटवे आफ़ इण्डिया की ऊंची छत, यही जनसमूह। इस जनसमूह में कुछ चेहरे ऐसे भी थे जो मेरी तरह हर रोज़ आते थे। इस जनसमूह से परे पत्थर की दीवार थी और उससे परे समुद्र और समुद्र में भाप से चलनेवाले जहाज़ भी थे, और छोटे अगनबोट और बड़े डैस्ट्रायर और नगरवासियों की सैर के लिए डीज़ल आयल से चलनेवाली मोटर-किश्तियां जिनके इंजिनों का धीमा-धीमा शोर यहां तक पहुंच रहा था। नारियल बेचनेवाला सिर पर टोकरी उठाए, नारियल लादे उधर से गुज़रा और ठिठककर रह गया। वह हर रोज़ उसी तरह ठिठककर रुक जाता, जैसे हर रोज़ उसे एक नया अनुभव होता था। कुछ क्षणों के लिए उसकी आंखों की पुतलियां आश्चर्य से फैल जातीं। एक श्वेत रंग की मेम गेटवे आफ़ इण्डिया की छत के नीचे नाच रही थी और इस प्रकार सड़क पर खुलेआम। वह पहली बार एक श्वेत रंग की मेम को इस प्रकार रासधारियों की तरह भीख मांगते हुए देख रहा था। कुछ क्षणों के लिए यह बात उसकी समझ में न आती और वह आश्चर्य से तकता, फिर सिर झटककर आगे बढ़ जाता।

'खोपरे का पानी, ठण्डा, मीठा, मज़ेदार, लेमन-जूस से अधिक मज़ेदार। खोपरे का गूदा, नरम, मुलायम, मलाई की तरह, रेशमी और शीतल !'

रेशमी और शीतल जैसे कारमन का शरीर !

इक पेशा सीनूर!

कारमन मेरे सामने खड़ी थी। उसके चैलेंज करते हुए होंठ बिलकुल मेरे होंठों के सामने थे। मैंने एक सिक्का अपनी कांपती हुई उंगलियों में अटका लिया। कारमन ने अपने होंठ एक झटके से हटा लिए। हाथ आगे बढ़ा दिया। सिक्का इस हाथ से उस हाथ में चला गया। गीत समाप्त हो गया। धरती-आकाश का चक्र रुक गया, तट घूमता-घूमता थम गया, लहरें कानाफूसी करते-करते चुप हो गईं और वह अमरीकी सैनिक के साथ चली गई।

वह हर संध्या को किसी न किसी के साथ सैर करने जाती थी। कोई मुड़ी हुई नाक वाला गंजा पारसी, कोई गन्दे दांतों वाला टामी, कोई चुकंदर की तरह सुर्ख अमरीकी उसे अपनी गाड़ी में सवार कराकर ले जाता। उसकी मुस्कराहट कहती, कारमन तेरे साथ भी जा सकती है। उसके होंठ सदैव मेरे होंठों के सामने आकर, जन-समूह में सबके सामने, इतना निकट होकर मुझे चैलेंज करते और उसके अग्निश्वास की लौ एक शोले की लपक की तरह मेरे गालों से छू जाती। लेकिन मेरे दिल में एक अज्ञात-सी झिझक थी, एक अत्यन्त शरमीली, नवजात कली की तरह कोमल और सरल-सी झिझक जो उससे पूर्व कभी उत्पन्न न हुई थी। एक ऐसी बेनाम-सी झिझक जो झिझक कम थी और चुभन अधिक थी। जैसे मैंने उससे पूर्व भी कारमन को कहीं देखा है, सुना है, पहचाना है, लेकिन मालूम नहीं, कहां? मैं यह भी जानता था कि वह कहां रहती है। ताज होटल के पीछे दूर तक वह इलाका था जहां फ्लैटों में अज्ञात देश की अज्ञात औरतें रहती थीं। वहीं एक फ्लैट में कारमन भी रहती थी। कई बार मैं उसके फ्लैट तक गया और फिर दरवाज़ा खटखटाए बिना लौट आया। यह पता न चलता था कि यह झिझक क्यों है, यह चुभन किस-लिए है?

और फिर आज बहुत दिनों के बाद मैंने साहस करके उसका दरवाज़ा खटखटा दिया। कारमन ने दरवाज़ा खोला। वह सोने के वस्त्र पहने हुए

थी। मुझे देखकर चौंक उठी। उसकी नज़रें जैसे निराश-सी हो गई हों, मैंने उनमें दर्द की एक तड़पती लुई ज़ंजीर देखी जो दूसरे क्षण में अदृश्य हो गई थी।

दूसरे क्षण में उसने कहा, "अन्दर आ जाओ" और वह यह कहकर स्वयं अन्दर चली गई, "दूसरे कमरे में वस्त्र बदल आऊं।"

जब वह वस्त्र बदलकर आई तो बिलकुल भिन्न थी। गाउन टखनों से भी नीचा था जिससे उसकी सुन्दर टांगें छिप गई थीं। उसने बाल स्पेनी शिष्ट सज्जनों की औरतों की तरह संवारे थे और उनमें चांद का मेटला लगाया था और उसपर महीन-सा दुपट्टा टांका था जो चांदी के लहरिए से झिलमिला रहा था। उसके होंठों की लिपस्टिक ग़ायब थी और आंखें गहरी स्याह और सोई-सोई-सी, और भयानक-सी जैसे किसी तूफान को अपनी गहराइयों में छिपाए हुए हो।

"आखिर तुम भी आ गए?"

मैंने कहा, "मैं केवल गाना सुनने के लिए आया हूं।"

"एक पेशा सीनूर," वह हंसी।

मैंने कहा, "तुम एक पेशा क्यों कहती हो, रुपया कहो।"

"एक लूपया सीनूर," हंसते-हंसते लोट-पोट हो गई, "एक लूपया सीनूर।"

"लूपया नहीं रुपया।"

"नही, मैं तो लूपया कहूंगी, या वही पेशा कहूंगी, बोलो, क्या कहूं?" उसने मुझे डपटकर कहा।

मैंने कहा, "अच्छा, तो लूपया कहो। मगर पेशा मत कहो।"

उसने मेरी ठोड़ी छूकर कहा, "तुम बड़े अच्छे लगते हो, बिलकुल उस गधे के बच्चों की तरह जिसपर मैं ऐली कान्ते में सवारी किया करती थी।"

"तुम ऐली कान्ते की रहनेवाली हो?"

"हां, ऐली कान्ते में मेरे बाप की बेकरी थी। इतनी अच्छी डबल रोटी

बनाता था वह, और मेरी मां के हाथ के क्रिसमस के केक बार्सिलोना तक जाते थे और ऐली कान्ते के बाज़ार का फ़र्श पत्थरों का बना हुआ था। टेढ़े-मेढ़े खुरदरे पत्थर, नीले पत्थर, जिनपर सदैव क़दमों से चप-चप की आवाज पैदा होती थी, और जो वर्षा में जीड़ के टुकड़ों की तरह चमकते थे, हाय ऐली कान्ते ! हमारी दुकान उसी बाज़ार में थी और उस दुकान के ऊपर हमारा घर था, जहां मैं और मेरा पिता और मेरी मां और मेरे दोनों भाई कोस्तरे और गारमू रहते थे। इतवार को हम लोग गिरजा से निबटकर 'गुरुनो केसपा' में जाते।"

"गुरुनो केसपा ?"

"हां," उसने अपना सिर मेरे कन्धे पर रख दिया और खुली खिड़की में से समुद्र का तट, परे अग्नबोट और जहाज़ों और डैस्ट्रायरों की ओर देखते हुए बोली, "गुरुनो केसपा, ऐली कान्ते से आठ मील दूर है। हम गधे के बच्चों पर सवार होकर जाते थे और हमारे माता-पिता गधों की सवारी करते और साथ में डबल रोटियां और मक्खन और केक और सैंडविच होते, और वह स्पेनी शराब, जो केवल स्पेनी अञ्जीरों से बनाई जाती है।" कारमन ने अपने होंठों से सीटी बजाई, "हम लोग दिनभर गुरुनो केसपा में रहते। वहां के गरम चश्मों में नहाते और तट के किनारे-किनारे रंगीन छातों के संसार में सो जाते···मेरी मां बहुत अच्छा तैर सकती थी। वह गोश्त के टिक्के और सूरी कबाब जेतून के तेल में तलकर बनाती। हाय ! वह सुगन्धि अभी तक मेरे नथनों में मौजूद है···तुम्हारा क्या नाम है ?"

"मेरा नाम क्या होगा," मैंने मुस्कराकर कहा, "मैं तो एक छोटा-सा गधे का बच्चा हूं।"

उसने अपनी आंखों से आंसू पोंछते हुए कहा, "मेरे गधे का नाम टोनू था। मैं तुम्हें भी टोनू कहूंगी, क्यों टोनू ?"

मैं गधे की तरह चिल्लाने लगा। वह जोर-जोर से हंसने लगी। फिर एकदम चुप हो गई। बोली, "मैं कितनी मूर्ख हूं। तुमसे बिलकुल एक मित्र का सा, एक ग्राहक का सा व्यवहार नहीं कर रही। अच्छा, मेरे अच्छे टोनू,

बताओ क्या पियोगे, शराब या टोमाटो जूस ?''

"शराब !"

"कौन-सी ?"

"तुम्हारे पास कौन-सी है ?"

"मेरे पास खालिस स्पेनी शराब है, जो मेरे होंठों से तैयार होती है।"

"कोई दूसरा ब्रांड बताओ।"

"क्यों ?"

"मैंने तुमसे कह दिया है, मैं केवल गीत सुनने आया हूं !"

"क्या मैं सुन्दर नहीं हूं, क्या जवान नहीं हूं मैं ?" वह अपना गाउन टखनों के ऊपर ले जाने लगी।

"रहने दो," मैंने उसे कहा, "मैं तुम्हारे सौन्दर्य की सूची नहीं देखना चाहता, तुमसे ग्राहकों का नहीं, एक मित्र का सलूक मांगता हूं कुछ घण्टों के लिए ही सही।"

"अच्छा, तो मैं तुम्हें केवल टोमाटो जूस पिलाऊंगी आज।"

मैंने भी पिया, उसने भी। फिर वह मुझसे ज़रा अलग होकर बैठ गई। कहने लगी "टोनू !"

"हां"

"मैंने तुम्हें कहीं देखा है। तुम्हारी आवाज़ सुनी है, तुम्हें पहचान रही हूं।"

"इधर भी यही हालत है।"

"लेकिन याद नहीं आता टोनू !"

"नहीं आता कारमन ! यह छोटा-सा संसार बहुत बड़ा है। हम एक दूसरे को जानते हुए भी नहीं पहचानते और कभी न जानते हुए भी पहचान लेते हैं।"

"मेरा ख़्याल है तुम मेरे बचपन के गधे के बच्चे हो।"

"तुम्हारा ख़्याल ठीक होगा कारमन। इस समय कोई अच्छा-सा स्पेनी गीत सुना दो और साथ उसका अर्थ भी बता दो।"

उसकी आंखों में फिर वही वेदना की लहर उत्पन्न हुई और मर गई। फिर हंसकर बोली, "मैं तो हमेशा गन्दे गीत गाती हूं, तुम उनका अर्थ समझकर शर्मा तो नहीं जाओगे ?"

मैं चुप ही रहा।

वह उठकर सामने मेज़ तक गई और वहां से गिटार उठा लाई और सामने कुर्सी पर बैठकर उसे बजाने लगी। बजाते-बजाते बोली, "अच्छा तो सुनो, तुम्हारे लिए एक पुराना गीत गाती हूं, केवल तुम्हारे लिए। एक साफ़-सुथरा गीत। एक अबोध बालक की तरह भोला-भाला गीत गाती हूं :

मेरे छोटे से सिगरेट-केस
आज तुम बिलकुल खाली हो
कल एतवार है, लेकिन
कल तुम्हें भर दूंगी (सिगरेटों से)
आज मेरे पास केवल दो सिगरेट हैं
जिन्हें तीन चाहने वाले मांगते हैं
दो और तीन पांच होते हैं
और पांच से दस होते हैं
और दस से बीस होते हैं।
बीस में से पांच कम करो तो पन्द्रह
पन्द्रह में से पांच कम करो तो दस
दस में से पांच कम करो तो पांच
और पांच से दस होते हैं
और दस से बीस होते हैं।

"हा-हा-हा !" गीत समाप्त होते ही वह ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी, "देखा कितना अच्छा गीत था टोनू, एक लूपिया निकालू।"

कुछ विचित्र-सा गीत था। बिलकुल मामूली शब्दों की तकरार थी और अक्षरों की गिनती। लेकिन सिगरेटों की कसैली-सी बू और उनका तेज़-सा

स्वाद उसमें भरा हुआ था। उस गीत में विचित्र प्रकार का धुआं-सा था जो भीतर जाकर चुभता था और कुछ ऐसी लहरें छोड़ता था जो हृदय के तट से छूकर कहती थी—तुम हमें जानते हो, तुम हमें जानते हो, यह धुन, यह गीत, यह तकरार तुम्हारी है !

मैंने उसे दस रुपये का नोट दिया, "कारमन, अजीब-सी धुन है, अपरिचित भी और परिचित भी। पूरा संगीत है। एशियाई, अफ्रीकी और यूरोपियन संगीत का अनोखा समन्वय, जो एक ही समय में कई लहरें उत्पन्न करता है—तुम्हरे सौन्दर्य की तरह जो एशियाई है, जो यूरोपियन है, जो अफ्रीकी है—

"तीन महाद्वीपों ने मिलकर इसका खमीर उठाया है। तू मेरे लिए अपरिचित भी है और परिचित भी। मैं तुझे जानता हूं और नहीं भी जानता।"

"पूरी तरह से जान लो," उसने हंसकर कहा, "सौ रुपये का हरा नोट चाहिए सीनूर !"

मैंने उठकर कहा, "तो मैं जाता हूं, तुम समझती हो, मैं तुम्हें सौ का नोट नहीं दे सकता ?"

वह देर तक मेरी आंखों में देखती रही। एकदम गंभीर-सी होकर बोली, "प्रेम का खेल मुझसे न खेलो। मैं पतिता औरत हूं, फिर भी औरत हूं। इस खेल में सदैव औरत की हार होती है। मैं कल से तुम्हें फ्लैट में न घुसने दूंगी।"

"अपने प्रेमी को न घुसने देना, टोनू तो आ सकेगा।"

"तुम मेरी बुद्धि से परे की चीज हो, अच्छा तो चलो कोई पिक्चर ही देखें।"

टोनू और कारमन बहुत अच्छे मित्र बन गए। टोनू कोई सुधारक न था कि दलित लौंडियों का जीवन सुधारता। वह कारमन में दिलचस्पी ले रहा था, अपने किसी भाव की तृप्ति के लिए। यह भाव प्रेम का न था, इतना उसे मालूम था। यह शरीर की पुकार भी न थी, यह भी वह जानता

था। कारमन अत्यन्त सुन्दर थी—ज्वालामुखी लावे की तरह सुन्दर। वह उसके तप्त होंठों की परिभाषा पढ़ सकता था। उसकी काली आंखों की गहराइयां माप सकता था। उसकी लचकती हुई कमर के दायरों में घूम सकता था। लेकिन यह सब कुछ जानते हुए भी एक असाधारण झिझक उसके रास्ते में बाधा बनी हुई थी। वह जब तक उस झिझक को पढ़ न ले, उसका अनुमान न कर ले, उसे समझ न ले, वह कैसे आगे बढ़ सकता था? परिणाम यह हुआ कि वे बड़े अच्छे मित्र बन गए। वह बड़ा बुद्धिमान व्यक्ति था। उसकी बुद्धि स्टाक-एक्सचेंज पर आज़माई जाती और हज़ारों के वारे-न्यारे हो जाते। उसकी बुद्धि एक तेज़ छुरी की तरह थी। बड़े-बड़े ब्रोकर उससे डरते थे। स्टाक-एक्सचेंज पर उसके खेल लोगों की समझ में न आते थे। लोग हारते और जीतते लेकिन वह सदैव जीतता। वह स्टाक-एक्सचेंज की हर गुत्थी सुलझा सकता था, केवल उससे कारमन के नशे की गूंज का विश्लेषण न हो सकता था।

वे दोनों बड़े अच्छे मित्र बन गए। टोनू ने कारमन को सुधारने की कोई कोशिश न की। कारमन गेटवे आफ इण्डिया में नाचती थी, गाती थी रुपया पानी की तरह बरसता था, शाम को किसी के साथ सैर के लिए चली जाती, फिर रात बाहर रहती या फ्लैट में शराब पीकर सो रहती। टोनू उसे तीसरे पहर के निकट सोते से जगाता।

"उठो, उठो!"

"सोने दो मुझे।"

"उठो, उठो, तुम्हारी दुकान के खुलने का समय आ गया।

"टोनू, चाय बनाओ मेरे लिए।

"टोनू, मैं आज हरा गाउन पहनूंगी।

"टोनू, मैं आज साड़ी क्यों न पहनूं?"

लेकिन मुंह-हाथ धोकर वह सदैव जेड के रंग का गाउन पहनती जो उसने टोनू से पहली मुलाकात के दिन पहना था। वही गाउन, वही मंटीला, वही दुपट्टा! फिर वे दोनों चाय पीते, फिर वह उसे अपने ऐलबम

दिखाती—अपनी मां का फोटो, अपने पिता का फोटो। यह मेरा बड़ा भाई है, यह मुझसे छोटा भाई है। यह मेरी फूफी है। यह मेरा मंगेतर था—बैलों से लड़नेवाला—खूनी बैलों से लड़नेवाला—डान ग्रेज़ियानो।"

ग्रेज़ियानो तंग पतलून और पटका बांधे खड़ा था, उसकी छाती चौड़ी थी, होंठ पतले, आंखें गहरी और भावुक और वह पूरी बांहों वाली कमीज़ पहने एक विचित्र शान से खड़ा था। दाईं तरफ फोटो ग्राफर ने जैतून की एक टहनी से सन्तुलन कायम किया हुआ था।

पहली बार जब मैंने यह फोटो देखा तो पूछा, 'कारमन ! फिर क्या हुआ ?"

उसने ज़ोर से एलबम बन्द कर दिया और मेरी ओर देखकर बोली, "तुम्हें पूछने का कोई अधिकार नहीं, गैट-आउट !"

मेरा आश्चर्य बढ़ गया। लेकिन उसने मुझे कमरे से बाहर निकालकर ही दम लिया। उस दिन के बाद मैंने कभी उससे कुछ नहीं कहा, लेकिन हम दोनों हर रोज़ यह ऐलबम देखते, खुशी-खुशी चाय पीते, उसके बाद वह गेटवे आफ इण्डिया चली जाती, मैं अपने मित्रों में आ जाता। सप्ताह में दो दिन मैं और कारमन बाहर जाते। ये दो दिन उसके टोनू के होते थे। उस दिन उसकी दुकान बन्द रहती थी। उसके गालों पर गाज़ा न होता था, उसके होठों पर लाली न होती थी, उसकी आंखों में मेकरा न पड़ता था। उस दिन एक स्पेनी गांव की लड़की की तरह वह मेरे साथ चलती। हंसती, खेलती, नाचती, गाती, नंगे पांव दौड़ती, झाड़ियों से तितलियां पकड़ती, रास्ता चलते हुए बच्चों से प्यार करती। हम लोग प्राय: शहर से बहुत दूर निकल जाते, कभी कल्याण के पास, कभी घोड़बन्दर से आगे। मेरे पास स्पेनी गीतों का संग्रह हो गया था। मैं अपने मित्रों में बहुत बदनाम हो गया था, लेकिन झिझक पूर्ववत् चली आ रही थी।

एक इतवार को मैंने उससे कहा "कारमन, मैं अगले बुध को न आ सकूंगा"

"क्यों ?"

"उस दिन मेरी बहिन की शादी है ।"

"तुम्हारी बहिन की शादी है और तुम मुझे नहीं ले चलोगे ?"

मैं सटपटा गया, कुछ न कह सका ।

उसने सख्ती से मेरा हाथ पकड़ लिया और कटुता से कहने लगी, "टोनू, मैं अवश्य चलूंगी । कारमन तुम्हारी बहिन की शादी में अवश्य चलेगी । तुम मुझे ले जाओ न ले जाओ, मैं स्वयं वहां पहुंच जाऊंगी ।"

"अच्छा, तो मैं तुम्हें स्वयं आकर ले जाऊंगा ।"

"और तुम्हें, अभी इसी समय, मेरे साथ चलना होगा ।"

"कहां ?"

"बाज़ार में, मुझे कुछ खरीदना है ।"

वह सब कुछ उठा लाई, जितने रुपये थे उसके पास । उसके पास बहुत रुपया था । उसने बहुत कुछ खरीदा, ज़ेवर, कपड़े, बर्तन । जहां मैंने कुछ कहा और उसने डाट पिलाई, "तुम्हे इससे क्या, ये मेरे रुपये हैं । मैं चाहे इन्हें फूंक दूं चाहे जला दूं ।"

मैंने कहा, "समझ से काम लो, भावुक न बनो तुम ही ने तो कहा था, औरत प्रेम के मामले में सदैव हार जाती है ।"

"कौन सूअर तुमसे प्रेम करता है ?"

विवाह की रात वह सहेलियों में ऐसे घुल-मिल गई कि मुझे कुछ पता न चला कि वह कहां है और क्या कर रही है । वह अपरिचित लड़की,

वह बाज़ार की वेश्या, शराफत का झूठा लिबास पहने विवाह की परम्पराओं में शामिल हो रही थी। स्वयं ढोलक बजाना सीख रही थी। विचित्र-विचित्र-से स्वांग भरकर मेहमान औरतों का जी बहला रही थी, नाच रही थी, गा रही थी, दुल्हिन के मेंहदी रचा रही थी।

फिर बारात आ गई, दूल्हा को भीतर लाया गया, सहेलियों ने गीत गाए। दूल्हा के सिर पर से रुपये वारे गए। कारमन ने कांपते हाथों से रुपये घुमाकर फेंके और फिर दूल्हा को हाथ से पकड़ कर ड्योढ़ी के भीतर लाई।

फिर वह भागी-भागी दुल्हिन के पास पहुंची और देर तक घूंघट उठाए उसकी सूरत देखती रही। फिर उसका चेहरा मलिन हो गया और वह कांपने लगी और कांपते-कांपते गिर पड़ी। देर तक मूर्च्छित पड़ी रही। जब होश में आई तो मुझसे कहने लगी, "टोनू, मुझे गाड़ी मंगवा दो, मैं जाऊंगी।"

मैंने कुछ नहीं कहा, मेरा हृदय उसके बहुत निकट आ गया था। वह चली गई।

एक बजे के निकट विवाह की रस्म पूरी हो गई और बधाई के तराने ने, औरतों के गीतों ने और बैंड के नगमों ने और बच्चों के शोर-गुल ने आसमान सिर पर उठा लिया और उन समस्त आवाज़ों, चित्रों, भावों के ऊपर कारमन का चेहरा घूमने लगा। मौन चेहरा, भावहीन चेहरा चुपचाप मेरी ओर ताकता गया, देर तक वातावरण में तैरता रहा यहां तक कि मैंने भी गाड़ी ली और उसमें बैठकर उसके यहां जा पहुंचा।

वह शराब पी रही थी।

उसने मुझे बोतल दिखाकर कहा, "असली बोखे है। पियोगे ?"

मैंने उससे गिलास छीनते हुए कहा, "सो जाओ।"

वह चीखकर बोली, मेरा गिलास वापस कर दो। तुमने मेरा सब कुछ मुझसे छीन लिया। अब मेरा गिलास भी मुझसे छीनते हो कमीने ?"

मैंने कहा, "मैंने छीना है तुमसे ? तुम इन कपड़ों और ज़ेवरों का तो ज़िक्र नहीं कर रही हो ?"

"नहीं, मैं तुम्हारा ज़िक्र कर रही हूं; तुम जनरल फ्रांको हो।"

"क्या बक रही हो ?"

"मैं बक रही हूं ? सुनो ! मैं बक रही हूं ! वाह रे मेरे जनरल फ्रांको !"

"मैं टोनू हूं कारमन ! लो अब सो जाओ।"

"नहीं, तुम मुझे वहां शादी पर क्यों ले गए ? मैंने कहा था, फिर भी तुम मुझे वहां क्यों ले गए ? क्राईस्ट ! अच्छा होता अगर मैं मर जाती !"

"कारमन ! कारमन !!"

"कारमन को कौन बुला रहा है ? वह कारमन जो अपने मां-बाप की बेटी थी, अपने भाइयों की बहिन थी, अपने मंगेतर की होनेवाली पत्नी थी, उसे जनरल फ्रांको ने फांसी पर चढ़ा दिया। ज़िन्दाबाद फ्रांको ?"

कारमन की स्याह पुतलियों में शोले नाच रहे थे। उसने अपनी उंगलियों में मेरे हाथ की उंगलियां ले लीं। शिकंजे की तरह कस लीं, बोली, "मैं तुमसे पूछती हूं, तुम इस तरह से हमें क्यों मारते हो ? पहले तुमने मेरे मां-बाप को मारा, क्योंकि वे कम्यूनिस्ट थे। फिर मेरे दोनों भाई युद्ध-भूमि में मारे गए। एक मैड्रिड में, एक बार्सीलोना में। मैं और मेरा मंगेतर ऐली कांते से भाग खड़े हुए, हम दोनों मैड्रिड के रणक्षेत्र में लड़ते रहे। वे हमें हरा न सके। तुम भूलते हो। मैड्रिड कभी नहीं जीतागया, वह वहां जीवित है, मेरी छातियों की हर बूंद में।"

उसने गिलास समाप्त कर दिया। मैंने बोतल परे सरका दी, "सो जाओ कारमन !"

"कौन सोएगा आज। वह खंदक देख रहे हो। दाईं तरफ़ साइन मेरिया का गिरजा है, बाईं तरफ तांबे के मिल की टूटी हुई दीवार। सामने दुश्मनों की खंदक बीच में अंजीर का पेड़, जहां मेरा मंगेतर मरा था।"

"तुम्हारा मंगेतर !"

"इतनी जल्दी भूल गए। डानग्रेज़ तो इतनी जल्दी भुला देनेवाला जवान न था। वह सुन्दर था, वह दिल का सुन्दर था, उसकी राइफल सुन्दर थी। हम सात दिन लड़ते रहे, खाने के लिए केवल तीन बिस्कुट मिलते थे। डान ग्रेज़ियानो, जो खूनी बैलों से लड़ता था, ग्राज भी खूनी बैलों से लड़ रहा था—बोतल इधर लाग्रो !"

मैंने बोतल उसके सामने रख दी।

"यह बोखे की खालिस शराब है। कितना ग्रच्छा स्वाद है इसका ! प्यास बुझा देती है। लेकिन उस समय हमारे पास शराब तो क्या, पानी की भी एक बूंद न थी। पानी मिल के भीतर था और डान ग्रेज़ियानो ग्रपनी जगह से हिल न सकता था जब तक कि कोई उसकी जगह पर न ग्रा जाए। तब स्वयं पानी लाने के लिए उठी।

"नल से पानी भरकर लौट रही थी कि दुश्मनों ने, जो मिल के भीतर छिपे हुए थे, गोली चलाई, यहां बाज़ू में लगी, यह निशान देख सकते हो। पढ़ सकते हो यह निशान क्या कहता है ?"

मैं चुप था।

"मैं पानी ले ग्राई, लेकिन जल्दी में गलत रास्ते से भागी ग्रौर जब मिल से बाहर निकली तो दोनों खंदकों के बीच थी ग्रौर सामने ग्रंजीर का पेड़ था। ग्रेज़ियानो ने कहा, 'लेट जाग्रो'। मैं घिसटने लगी लेकिन पानी बर्तन में मौजूद था। दुश्मन गोलियां बरसा रहा था। मैं घिसट रही थी ग्रौर खून मेरे बाज़ू से बह रहा था। फिर मैं मूर्च्छित हो गई। डान ग्रेज़ि-यानो चीते की तरह लपककर ग्रागे बढ़ा। सनसनाती हुई गोलियां निकल गईं। उसने मुझे उठा लिया ग्रौर वापस ग्रपनी खंदक को चला जैसे विजयी खूनी बैल को घायल करके ऐम्फीथियेटर से बाहर ग्रा रहा हो।

"मैं उसकी गोदी में थी। गोलियों का संगीत चारों ग्रोर था। गोली उसकी पीठ में घुस गई थी। वह मुझे शादी की ग्रंगूठी पहना रहा था, 'सुनो, सुनो, कारमन, मैं मर रहा हूं। ग्रन्तिम बार सुन लो कारमन ! मैं मर

रहा हूं, लेकिन तुम मेरी बीवी हो'।

" उसके होंठ मेरे होंठों से मिल गए। मैंने उसके गले में बांह डालकर कहा, 'मैं तुम्हें मरने न दूंगी।'

" वह हंसा, मुझे एक सिगरेट दी और धीरे-धीरे सिगरेट पीते हुए गाने लगा :

मेरे छोटे-से सिगरेट-केस
आज तुम बिलकुल खाली हो
कल इतावर है लेकिन
कल तुम्हें भर दूंगा (सिगरेटों से)
आज मेरे पास केवल दो सिगरेट हैं
जिन्हें तीन सिपाही पीना चाहते हैं।
दो और तीन पांच होते हैं !"

"कारमन ! कारमन !"

वह ऊंचे स्वर में गा रही थी। पर एकाएक मौन हो गई। फिर धीरे से बोली, "वह गीत गाते-गाते मर गया।"

" और बिलकुल उसी समय सान मेरिया के गिरजा के घंटे झनझना उठे। जिस तरह आज दूल्हा की आरती के समय घंटे झनझनाए थे।"

वह तकिये में सिर छिपाकर रोने लगी। फिर एकाएक उसने सिर उठाया और मेरी ओर आग-भरी नज़रों से देखकर बोली, "क्यों मारते हैं वे, क्यों मारते हैं वे ? इस प्रकार बच्चों को मार देते हैं। लड़कों को गोली का निशाना बना देते हैं, मां-बाप को फांसी पर चढ़ा देते हैं। बहिनों की इज्ज़त लूट लेते हैं, ओह ! ओह ! !"...

वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

"यह जंग, मुझे इससे घृणा है। यह जंग कब समाप्त होगी ?"

"हो जाएगी !"

"हां, हो जाएगी टोनू !" वह अपने आंसू पोंछने लगी। उसका स्वर एकदम बदल गया। वह एक विचित्र ढंग से प्रसन्न होकर बोली, "हां ज़रूर

होजाएगी टोनू । हो जाएगी, जैसे आज तुम्हारी बहिन की शादी हो गई है। मैं आज बहुत प्रसन्न हूं टोनू ! आज मुझे अपना अंजीर का पेड़ मिल गया है । ऐली कांते के बाजार का फर्श जेड की तरह चमक रहा है । हम गधों पर सवार होकर गुरुनोकेसपा को जा रहे हैं ।रास्ते में वृक्ष अंजीरों से लदे खड़े हैं और वातावरण गुलाब के फूलों से महक रहा है। आज मेरी शादी हुई है टोनू । सुनते हो, आज मेरी शादी हुई है । डान ग्रेज़ियानो मेरी गोद में है, उसकी शादी की अंगूठी मेरी अंगुली में है और सान मेरिया का गिरजा घंटियां बजा रहा है। सुनते हो टोनू ! यह सान मेरिया कि घंटियों का स्वर ···· यह सान मेरिया की घंटियों का स्वर है ···"

कारमन सो गई ।

दूसरे दिन मैं उसके फ्लैट पर गया लेकिन वहां कोई न था। गेटवे आफ इंडिया पहुंचा तो वह उसी प्रकार नाच रही थी और रिझा रही थी और उसकी स्याह आंखों में शरारत भरी हुई थी और स्याह घुंघरियाले बाल यों झटके लेते जैसे विश्व पर काली बदलियां छा रही हों, और स्पेनी गीत में मूरी नगमें का वहशी लहराव कांप-कांप जाता था। —एक पेशा सीनूर !

और चारों ओर से सिक्कों की वर्षा हो गई । एक सिक्का मैंने भी दिया। उसकी पतली-पतली उंगलियां आगे बढ़ीं, फिर रुक गई । वह एक 'अपरिचित' रूप से आगे बढ़ गई जैसे उसने मुझे कभी न देखा था, न कभी पहचाना था । हृदय को शांति मिली । एक सिक्का मैंने दिया, वह सिक्का उसने नहीं लिया । बात समाप्त हो गई । मुझे अनुभव हुआ जैसे बात समाप्त हो गई है, सदैव के लिए ।

मैं टहलता-टहलता आगे बढ़ गया । गेटवे आफ इंडिया से बहुत दूर आगे निकल गया । थोड़ी दूर तक मैंने गेटवे आफ इंडिया और कारमन और

उस जनसमूह को, जो उसके गिर्द था, अपने साथ-साथ तट की रेत पर चलाया। फिर गेटवे आफ इंडिया और वह जनसमूह गायब हो गया और केवल कारमन रह गई जो दूर तक मेरे साथ समुद्र की लहरों पर चलती गई। फिर वह भी ऊपर उठकर अन्तरिक्ष के बादलों पर उड़ने लगी और फिर तारों में जाकर विलीन हो गई। उसके बाद अंधकार छा गया और लहरें विचित्र-से राग अलापने लगीं और तारे पलकें झपक-झपककर मुझे आश्चर्य से देखने लगे।

और दूर, कहीं बहुत दूर, सान मेरिया के गिरजा के घंटे बजने लगे !

घाटी

वह उचककर खेत की मेड़ पर आ रहा और धूप तेज़ होने के कारण आंखों के ऊपर हाथ रखकर दृश्य देखने लगा। खेत में दूर तक कपास के फूल खिले हुए थे। ये खेत मेड़ से ढलान की ओर जाते थे और फिर घाटी तक उसी प्रकार चले गए थे। घाटी के ऊपर भी जहां तक नज़र जाती थी, कपास के फूल खिले हुए थे। बीच में कपास के श्वेत फूल और खेतों के चौकोर किनारों पर सन के सुनहले पीले-पीले फूल। कहीं से वायु का एक तेज़ झोंका आया और खेत, जो नीचे से ऊपर की ओर जाते थे, झाग उगलता हुआ समुद्र बन गए। लहरें, झाग ही झाग। टेढ़ी-टेढ़ी उछाल, बल खाती हुई घाटी के ऊपर ही ऊपर उठती गई और सन के सुनहले फूल डालियों पर डोलने लगे। घाटी के ऊपर एक चरवाहा नज़र आया जो गायों को छड़ी से हांकता हुआ गांव की ओर ले जा रहा था; गांव, जो घाटी के बिलकुल दूसरी ओर चोटी से ज़रा इधर, ढलवान तलहटी में था।

राजसिंह ने अपने दोनों हाथ कानों पर रखे और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाया, "ओ जवान ! जवान ओए ए-ए !"

ऊपर चरवाहे ने घूमकर देखा। राजसिंह की आवाज़ अभी तक ऊंची घाटी की सलवटों और चट्टानों में गूंज रही थी। उसने अपने माथे पर हाथ रखा। फिर राजसिंह की तरह अपने दोनों हाथ कानों पर रखे और चिल्ला-कर कहा, "हला ओए ए-ए !"

गाएं चरते-चरते रुक गईं और गरदन मोड़कर नीचे देखने लगीं—दूर नीचे जहां राजसिंह खड़ा था।

राजसिंह फिर चिल्लाया, "ओ जवान, मेरे घर कह देना, राजसिंह

जमादार आ गया आ-आ !"

"ओए सलाम ठाकुर चाचा, राज़ी-बाज़ी तगड़ा खुश एं एं एं !" चरवाहा वहीं दो मील दूर से चिल्लाया। उस हर्षपूर्ण स्वर ने सारी वादी को अपने प्रसन्नतापूर्ण संगीत से परिपूर्ण कर दिया।

"याकूब किधर ए-ए ?" चरवाहे ने तुरन्त ही पूछा।

"ओ···मैं बड़ा तगड़ा राज़ी-बाज़ी आं, याकूब लाला वी बड़ा खुश ए ! पिंडी मिल्या सी ! जल्दी आवेगा, जवान ओए ! मेरे घर खबर कर देना ओए ए-ए !"

चीखते-चीखते राजसिंह का दम फूल गया, मुख लाल हो उठा, चेहरे की रगें तन गईं। एक समय से वह टेलीफोन पर बात करने का अभ्यस्त हो चुका था और गांव के इस टेलीफोन को बिल्कुल ही भूल गया था जो बिना किसी तार के या बिजली-बैटरी के पांच-छ: मील के घेरे में काम आ सकता है। यहां आम बोलचाल की भाषा नहीं चलती। इसका व्याकरण ही अलग है। वाक्य अलग-अलग नहीं बोले जाते—मशीनगन की गोलियों की तरह एक साथ तड़ातड़ ! लेकिन घूमकर निकलते हैं क्योंकि उनका मतलब वादी में गूंज उत्पन्न करना होता है। जब तक शब्दों में गूंज उत्पन्न न हो गांव का यह टेलीफोन यह काम नहीं करता। इसके अतिरिक्त इनके इस्तेमाल में फेफड़ों की पूरी शक्ति लगती है और गले का तम्बूरा सदैव कसा रहता है। राजसिंह ने रूमाल से अपना चेहरा साफ किया और मुस्कराने लगा। पहले तो वह कितनी देर तक इस प्रकार घाटी की चोटी पर या घाटी के नीचे खड़े-खड़े बातें कर सकता था। बचपन में जब बड़े ठाकुर हल चलाने के लिए नीचे खेतो में जाते तो वह दोपहर के समय चिल्लाकर कहता, "रोटी···रो-रो-रोटी अछती ओए ए !" (रोटी आई है।)

और उसका बाप वहीं खेतों में से चिल्लाकर कहता, "बहल कर लाए नठिया आ आ !" (जल्दी से ले आ बेटा)।

और फिर उसे याद आया कि जब महायुद्ध से पूर्व कहोटा की मोटर-रोड तैयार हो रही थी और उसने खेत की मेड़ पर खड़े-खड़े गरदन मोड़-

कर अपने पीछे, नीचे बहते हुए नाले को देखा, जिसके किनारे-किनारे वह मोटर-रोड़ गुजर रही थी, तो उसकी याद के झिलमिलाते सुनहले सायों में वे क्षण एकदम जीवित हो उठे, जब यहां इस नदी के किनारे खेमे लगे थे और मज़दूर पत्थर कूट-कूटकर रोड़ी तैयार कर रहे थे और खूबचन्द ब्राह्मण जो ब्रह्मपुर का रहने वाला था इस मोटर-रोड़ का ठेका लेकर रावलपिंड़ी से आया था। वह भी एक बड़े खेमे में रहता था और उसके बीवी-बच्चे भी वहीं आ गए थे थोड़े दिनों के लिए। उसकी पत्नी बर्मा की रहनेवाली थी और पहाड़ी बोली नहीं जानती थी। हां, उसकी दोनों बेटियां पहाड़ी बोली में फर-फर बातें करती थीं और फिर कभी-कभी बर्मी भाषा में न जाने क्या ऊटपटांग बातें करने लगतीं। अंजना और संजना, वे दोनों बहिनें कितनी चंचल और निडर थीं, बर्मी स्त्रियों की तरह। और राजसिंह को वह क्षण याद हो आया जब इसी खेत में घुसकर उसने अंजना को तरेड़ी चुराते हुए पकड़ लिया था। नीचे नदी के किनारे सड़क बन रही थी और लोहे का भारी-भरकम रौलर झूमता-झामता सड़क पर पत्थर के टुकड़ों को समतल कर रहा था। और परे बड़े खेमे के बाहर अंजना का बाप एक आरामकुर्सी पर लेटा ऊंघ रहा था। और उसका अंग्रेज़ मैनेजर अपने खेमे से स्लीपिंग गाउन पहने, तौलिया सिर पर डाले नहाने के लिए जा रहा था और वातावरण में गुटारियां 'करायें-करायें' करती हुई अपने भूरे सुनहरी पर तोलते हुए उड़ गईं। और राजसिंह जो बड़े ठाकुर के लिए खाना ले जा रहा था, खेतों में सरसराहट-सी होते देखकर रुक गया और अपनी जगह दुबककर बैठ गया। बारह बजे का समय होगा लेकिन वातावरण अभी तक पाले से जकड़ा हुआ मालूम होता था। घास पर ओस अभी तक सूखी न थी और तरेड़ियों की महक नथनों में घुसती चली आ रही थी।

फिर सरसराहट उत्पन्न हुई। राजसिंह भागता हुआ बैलों की ओर गया। अंजना घबराकर उठ खड़ी हुई, उसके हाथ में सब्ज़-सब्ज़, लचकीली और कोमल तरेड़ियों के दो दाने थे। चोरी के ख्याल से उसका चेहरा बिलकुल सुर्ख हो गया था और आंखे असाधारण रूप से चमक रही थीं और

उसकी छोटी-सी नाक बड़ी अजीब नजर आ रही थी और उसका छोटा-सा कद और उसका गोल-मटोल-सा शरीर, राजसिंह को उस समय अंजना बिलकुल एक लचकीली और कोमल तरेड़ी की तरह मालूम हुई। उसने अंजना का हाथ पकड़कर कहा, "खाओ, सोनियों खूब खाओ······और उतार दूं ?"

और अंजना ने हाथ झटक दिया और तरेड़ियां फेंक दीं और खेत की मेड़ की ओर भाग गई। और इतनी ऊंचाई से दूसरी ओर छलांग लगाकर नीचे सड़क पर उतर गई और भागते-भागते अपने खेमे में चली गई और राजसिंह हंसने लगा और बड़े ठाकुर का खाना उठाए आगे चल दिया, और 'चन्ना' गाता हुआ दूर निकल गया और अंजना देर तक उसके हाथ के स्पर्श का अनुभव करती रही और राज की निकटता और उसका बल और उसकी जवानी और उसकी हंसी और निडरता और विचित्र-सी पुष्टिवर्धक सुगन्धि जो पुरुष के शरीर से उठती है, उसके नारी-हृदय पर छा गई। और उसने चाहा कि वह कल फिर तरेड़ियां चुराने जाए और राज के हाथों पकड़ी जाए और खूब-खूब पिटे। उसके बाप ने भी उसे कई बार पीटा था लेकिन वह और बात थी शायद, अन्यथा उसे राज के हाथों पिटने की इच्छा क्यों होती ! उस रात वह ठीक तरह से न सो सकी थी और कुछ विचित्र प्रकार की सुगन्धियां, परछाइयां और गूंजें उसकी निद्रा के सुन्दर संसारों में कांपती रहीं और एक मीठा-मीठा गरम गीत बनकर उसकी आत्मा में रचती चली गईं। सुबह जब वह उठी तो उसका सारा शरीर फोड़े की तरह दुख रहा था और जब कल की तरह, उसी समय, वह खेतों में जाने-बूझे चोरी करने और अनजाने में राज से मिलने के लिए गई तो उसे निराशा न हुई।

राज ने पूछा, "संजना तुम्हारी छोटी बहिन है या बड़ी ?"

"तुम्हें क्या मालूम होता है ?"

"मालूम होता है कि तुम छोटी हो।"

"हां," अंजना ने प्रसन्नतापूर्ण स्वर में कहा, "और तुम्हारा कोई बड़ा भाई भी है ?"

"नहीं, एक छोटी बहिन है पर वह बहुत छोटी है। आठ वर्ष की।"

"तुम क्या करते हो ?"

"मैं एफ०ए० में पढ़ता था गार्डन कालेज, रावलपिंडी में। फिर हमारे पिताजी का देहांत हो गया। गिरदावर थे इस इलाके में। अब हमारे दादा खेती-बाड़ी करते हैं। हमने क्लर्की के लिए आवेदन-पत्र दे रखा है।"

"तुम स्वयं कोई काम क्यों नहीं करते ?"

"दादा नहीं करने देते। कहते हैं, मैं तुझे नौकरी कराऊंगा बाप की तरह। मेरे दादा का स्वभाव बहुत सख्त है। मैं उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकता।"

"खेती-बाड़ी भी नहीं ?"

"नहीं।"

"तो हमारे यहां नौकरी कर लो। मुंशी की एक जगह खाली है।"

"दादा कहते हैं, केवल सरकारी नौकरी लेकर दूंगा तुम्हें। यह फ़सल कट जाएगी तो मुझे डिप्टी कमिश्नर के पास ले जाएंगे।"

"हमारे पिताजी डिप्टी कमश्निर तो क्या लाट साहब को भी जानते हैं।"

"हमारे पिताजी मर गए, नहीं तो हम भी लाट साहब को यहां शिकार पर बुला रहे थे।"

"शिकार पर ?"

"हां, मैं बन्दूक बहुत अच्छी चला लेता हूं और मेरे दादा भी। और हमारे पिता का निशाना तो कभी भी न चूकता था।"

वे दोनों चुप हो गए। एक दूसरे की ओर देखने लगे। अब तक किसी-ने हार न मानी थी। अंजना कह रही थी, मैं औरत हूं, कुंवारी धरती हूं, मुझमें रस है, सुगंधि है···सुन्दरता की ज्योति। मेरे बाप के पास रुपया है, मोटर-रोड का ठेका है, अंग्रेज़ मैनेजर है, मेरी मां बर्मा की स्वतंत्र नारी है। तुम कौन हो···जंगली, वहशी, निर्धन, बेकार !

मगर तुम्हें अच्छा तो लगता हूं···राज का दिल कह रहा था···मुझ

में भी रस है, सुगन्धि है, यौवन का अथाह समुद्र है। आओ, तुम्हें इसकी गहराइयों में ले चलूं। तुम कुंवारी धरती हो तो मेरा बीज भी कुंवारा है और आत्मा ऐसी उजली है जैसे पिछले पहर में कपास के सोए हुए फूल ! और फिर राज को लगा जैसे वह मौन क्षण बार-बार कह रहा है—आओ, इन्हें जगा दें, आओ इन्हें जगा दें ! और राज ने आगे बढ़कर अंजना को अपनी बाहों में उठा लिया और उसके होंठ चूमने लगा, क्योंकि यह क्षण उसकी प्रतीक्षा में था। जब से यह धरती बनी है, यह आकाश बना है, यह वायुमंडल बना है, यह क्षण उनकी प्रतीक्षा में था, श्वास रोके हुए, आश्चर्य-चकित, अनुभूतिपूर्ण चुप्पी में गुम। आदिकाल से उनकी प्रतीक्षा कर रहा था कि वे आएं उनके होंठ मिलें और यह क्षण जाग उठे। यह संसार खिल-खिलाकर हंस पड़े और यह आकाश में संगीत से परिपूर्ण हो जाए। और यह मौन, प्रतीक्षित, आश्चर्यचकित क्षण एक रंगीन बुलबुले की तरह वातावरण में उड़ता-उड़ता लुप्त हो जाए।

राज ने आश्चर्य से कहा, "तुम्हारे होंठ मैंने क्यों चूमे ?"

उत्तरमें अंजना ने अपनी आंखे बन्द कर लीं और कहा, "हाय !" 'हाय' ऐसे कहा उसने जैसे उसमें सुख न हो, दुःख ही दुःख हो, नारी के सारे जीवन का दुःख, ममता का दुःख, उत्पत्ति की तड़प, अपने आपको खोकर किसी नये जीवन को जन्म देने की पीड़ा। उस 'हाय' से जैसे कुंवार पने ने अपना बंद-बंद तोड़ डाला था और उसका रोआं-रोआं मुंह खोले वर्षा की बूंद को प्रतीक्षित था। अंजना की आंखें बन्द थीं लेकिन उसके होंठ खुले थे और उनमें दांतों की लड़ी नज़र आ रही थी और उसके बाल बिखर-बिखरकर माथे पर आ रहे थे और राज ने पूछा, ये बिजलियां क्यों कड़क रही हैं ? यह कुंवारे बीज की बौछार किधर पड़ रही है ? वह धरती के भीतर क्यों धंसता चला जा रहा है—एक हल की तरह ? उसका श्वास रुकने लगा और उसने ज़ोर से अंजना को अपनी छाती से सटा लिया।

उसी समय उसके दादा की आवज़ ज़ोर से गूंजी, "नठिया ओए-ए ! बहल कर ला ओए-ए ! रोटी राजू आ-आ-आ ! "

आवाज़ चीखती-चीखती, गूंजती-गूंजती, गरजती-गरजती उसके अनुभवों की तहों को चीरती-फाड़ती भीतर चली आई। एकाएक उसने अंजना को अपने आप से अलग कर दिया और खाना लेकर भाग गया। अंजना देर तक खड़ी रही, फिर वहीं हरियाली पर गिरकर हांफने लगी। उसका हृदय बैठा जा रहा था। उसे चक्कर आ रहे थे। धरती-आकाश घूम रहे थे और घूमते हुए दायरों के बीच में शहनाई का संगीत था जो ऊंचे से ऊंचा होता चला जा रहा था। उसने एक तरेड़ी तोड़ी और उसे दांतों तले दबाकर कचर-कचर खाने लगी। राज ने उसे मुड़कर देखा। वह वहीं बैठी थी। आगे जाकर वह फिर मुड़ा। वह वहीं बैठी थी और जब वह दादा को खाना खिलाकर लौटा, वह वहीं बैठी थी।

और फिर राजसिंह को वह सुन्दर तीन महीने याद आए जो अब धुंधलके में फैलकर एक ही क्षण बन गए थे—जब वह और अंजना अपने यौवन का पहला प्रेम लिए खेतों में घूमते थे। चांदनी में नहाते थे। सायों में, घाटियों की ओट में, वर्षा की बौछार में एक दूसरे से मिलते थे, जब हर समय किसीके निकट रहना कितना भला लगता है। जब एक दूसरे के श्वास और पसीने से भी इतर की सुगन्धि आती है। जब अनुभव सेराब नहीं होता लेकिन सेराब होने लगता है और एक दूसरे को देखकर वातावरण में कलियां-सी खिलने लगती हैं और फूलों के शगूफ़े फैलते-फैलते सारे वायुमंडल को घेर लेते हैं और उनके बीच में केवल दो हृदय धड़कते रह जाते हैं। जब संसार सिमटते-सिमटते एक दृष्टि बन जाता है और फिर वह दृष्टि फैलते-फैलते सारा वायुमंडल बन जाती है। और उस दृष्टि के आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, इधर-उधर कुछ नहीं होता, अनुभव की सर्वव्यापकता, अपने सौंदर्य के अथाह फैलाव में हर वस्तु को डुबो देती है।

वह क्षण कितना सुन्दर था। अब भी उसकी याद आने से राज का श्वास रुकने लगता। जब वह दूर, ऊपर गांव से बहुत दूर उधर डाब में नंगे नहाते थे और एक दूसरे के शरीर को आश्चर्य से देखते के देखते रह जाते थे। कितनी पवित्रता थी उन शरीरों में—सुन्दरता पर तोलती हुई, शक्ति

पर खोले हुए ! और फिर, जैसे सुन्दरता अपनी ही सुन्दरता के बोझ से एक फलदार टहनी की तरह झुक जाए, बस इसी प्रकार अंजना की नजरें झुक गई थीं । उन नज़रों में निर्लज्जता नहीं थी, पाप का अनुभव भी न था, एक गहरी पवित्रता और सतीत्व और भरोसा, जिसका अंशमात्र भी उसने उन फ़िलस्तीनी लड़कियों में न देखा था । 'सुन्दरता' के साथ वह अक्सर समुद्र के तट पर नहाया करता था और उसे ईरान, बग़दाद, मिश्र, फ़िलस्तीन और इटली की अपनी प्रेम-कथाएं याद आईं—लेकिन वे इस समय क्यों याद आईं ? वे तो वायु में उड़ जाने वाले तिनकों से अधिक महत्त्व न रखती थीं । उनकी अपवित्रता से उसकी आत्मा को कोई सरोकार न था । वह आज से कई वर्ष पूर्व की पवित्रता प्राप्त करके कपास के खेतों में खड़ा था और उसकी नज़रों में अंजना हंस रही थी ।

अंजना हंस रही थी और उसे इशारों में बुला रही थी । घाटी के ऊपर ……

"ओ जवान ओए-ए…घर आ जा !"

आवाज़ गूंजी, लड़की घाटी के ऊपर खड़ी हाथ हिला रही थी ।

"चन वीरा ओए-ए-ए-मैं आ गई !"

लड़की घाटी से नीचे उतरने लगी । दौड़ते-दौड़ते वह नीचे की ओर आ रही थी । अब वह ढलान में आ गई और अब वह उसकी छाती से लिपट गई थी ।

"मेरे वीरा चन !" (मेरे चांद ऐसे भाई) ।

और राजसिंह ने अपनी छोटी बहिन को ज़ोर से अपने गले से लिपटा लिया और उलके माथे को चूमने लगा । घर की चारदीवारी उसके चारों ओर फैल गई और उसने किंचित दुख-भरे स्वर में कहा, "मेरी नन्ही बहन ! चंचल कमलो, तू कितनी बड़ी हो गई है, मैंने तुझे पहचाना भी नहीं ।"

"वहलकर ओए नटिया ! घर आ जा !" दादा बुला रहे थे और हाली और सारा गांव ऊपर घाटी पर एकत्रित था और आकाश उनके पीछे था और बादल उनके सिरों पर उड़ रहे थे और सूरज की गरम-गरम प्यारी

प्यारी धूप चारों ओर फैली हुई थी और धरती चारों ओर से उसे बुला रही थी—घर आ जा बेटा, घर आ जा !

राजसिंह ने कमलो का हाथ पकड़ा और वे दोनों खेतों में दौड़ते गए और घाटी के ऊपर चढ़ने लगे और जब वह घाटी के ऊपर चढ़ गए तो गांव वालों ने राजसिंह को गले से लगा लिया और ढोल बजने लगे और किसान नाचने लगे।

इतनी दूर घाटी के ऊपर वे लोग खिलौने की तरह हल्के-फुल्के मालूम हो रहे थे और ऊपर सूरज मुस्करा रहा था और नीचे धरती अपने बेटों को प्रसन्न देखकर फूली न समाती थी और टेढ़े-मेढ़े खेतों में कपास के फूल समुद्र बन गए थे और उनके किनारे-किनारे सन के सुनहले फूलों की झालर थी ।

और दूर सुहासे के स्टेशन पर कोई रेलगाड़ी कूकती हुई आकर रुकी और उसकी सीटी की मद्धिम आवाज़ निद्रापन लिए हुए उस घाटी के वातावरण में एक अपरिचित संगीत की तरह बिखर-बिखर गई !

कालू भंगी

मैंने इससे पहले हजार बार कालू भंगी के बारे में लिखना चाहा है लेकिन मेरी कलम हर बार यह सोचकर रुक गई है कि कालू भंगी के सम्बन्ध में लिखा ही क्या जा सकता है ? भिन्न-भिन्न कोणों से मैंने उसके जीवन को देखने, परखने, समझने की कोशिश की है, लेकिन कहीं वह टेढ़ी रेखा दिखाई नहीं देती जिससे कोई दिलचस्प कहानी बन सकती हो। दिलचस्प होना तो एक ओर, कोई सीधा-सादी फीकी रूखी कहानी भी तो नहीं लिखी जा सकती कालू भंगी के सम्बन्ध में। फिर न जाने क्या बात है, हर कहानी को आरंभ करते हुए मेरे मस्तिष्क में कालू भंगी आ खड़ा होता है मुझ से मुस्करा कर पूछता है :

"छोटे साहेब, मुझपर कहानी नहीं लिखोगे—कितने वर्ष हो गए हैं तुम्हें लिखते हुए ?"

"आठ वर्ष।"

"कितनी कहानियां लिखी हैं तुमने ?"

"साठ और दो, बासठ।"

"मुझमें क्या बुराई है छोटे साहेब ! तुम मेरे बारे में क्यों नहीं लिखते ? देखो, कब से मैं उस कहानी की प्रतीक्षा में खड़ा हूं। तुम्हारे मस्तिष्क के एक कोने में एक समय से हाथ बांधे खड़ा हूं। छोटे साहेब, मैं तो तुम्हारा पुराना सेवक हूं कालू भंगी। आखिर तुम मेरे बारे में क्यों नहीं लिखते ?"

और मैं कुछ उत्तर नहीं दे पाता। इतना सीधा-सपाट जीवन रहा है कालू भंगी का कि मैं उसके सम्बन्ध में कुछ भी तो नहीं लिख सकता।

ऐसा नहीं है कि मैं उसके बारे में कुछ लिखना नहीं चाहता। वास्तव में बहुत देर से मैं कालू भंगी के सम्बन्ध में लिखने का विचार कर रहा हूं परन्तु कभी लिख नहीं सका, हजार कोशिश के बावजूद नहीं लिख सका। इसलिए आज तक कालू भंगी अपनी पुरानी झाड़ू लिए, अपने बड़े-बड़े नंगे घुटने के लिए, अपने फटे-फटे खुरदरे, बढंगे पांव लिए, अपनी सूखी टांगों पर उभरी दरीदें लिए, अपने कूल्हों की उभरी-उभरी हड्डियां लिए, अपने भूखे पेट और उसकी सूखी चमड़ी की काली सलवटें लिए अपनी मुर्झाई हुई छाती धूल से अटे बालों की झाड़ियां लिए, अपने सिकुड़े-सिकुड़े होंठों; फैले-फैले नथनों, झुर्रियों भरे गाल और अपनी आंखों के अन्धकारमय गढों के ऊपर नंगी चिंदिया उभारे मेरे मस्तिष्क के कोने में खड़ा है। अब तक कई पात्र आए और अपनी जीवनियां बताकर, अपना महत्व जताकर चले गए। सुन्दर स्त्रियां, सुन्दर काल्पनिक मूर्तियां, शैतान के चेहरे, इस मस्तिष्क के रंग-रोग़न से परिचित हुए। इसकी चारदीवारी में अपने दीपक जलाकर चले गए लेकिन कालू भंगी बराबर अपनी झाड़ू सम्भाले उसी तरह खड़ा रहा। उसने उस घर के भीतर आने वाले प्रत्येक पात्र को देखा है। उसे रोते हुए, गिड़गिड़ाते हुए, प्रेम करते हुए, घृणा करते हुए, सोते हुए, जागते हुए क़हक़हे लगाते हुए, व्याख्यान देते हुए, जीवन के हर रंग में, हर सतह पर, हर मंज़िल में देखा है। बचपन से बुढ़ापे और बुढ़ापे से मृत्यु तक, उसने हर अपरिचित को इस घर के दरवाज़े के भीतर झांकते हुए देखा है। और उसे भीतर आते देखकर उसके लिए रास्ता साफ़ कर दिया है। वह स्वयं परे हट गया है, एक भंगी की तरह हटकर खड़ा हो गया है; यहां तक कि कथा आरम्भ होकर समाप्त भी हो गई है, यहां तक कि पात्र और दर्शक दोनों विदा हो गए हैं लेकिन कालू भंगी उसके बाद भी वहीं खड़ा है। अब केवल एक पग उसने आगे बढ़ा लिया है और मस्तिष्क के बीच में आ गया है ताकि मैं उसे अच्छी तरह देख लूं। उसकी नंगी चिंदिया चमक रही है। ओठ पर एक मूक प्रश्न है। एक समय से मैं उसे देख रहा हूं। समझ में नहीं आता क्या लिखूंगा

इसके बारे में। लेकिन आज यह भूत ऐसे नहीं मानेगा ! इसे कई वर्षों तक टाला है, आज इसे भी विदा कर दें........!

मैं सात वर्ष का था जब मैंने पहली बार कालू भंगी को देखा। उसके बीस वर्ष बाद, जब वह मरा, मैंने उसे उसी हालत में देखा। कोई फर्क न था, वही घुटने, वही पांव, वही रंगत, वही चेहरा, वही चिंदिया, वही टूटे हुए दांत, वही झाड़ू, जो मालूम होता था मां के पेट से उठाए चला आ रहा है। कालू भंगी की झाड़ू उसके शरीर का एथ अंग लगती थी। वह प्रतिदिन रोगियों का मल-मूल साफ़ करता था, डिस्पैन्सरी में फिनाइल छिड़कता था, फिर डाक्टर साहब और कम्पौंडर साहब के बंगलों की सफ़ाई का काम करता था। कम्पौंडर साहब की बकरी को और डाक्टर साहब की गाय को चराने के लिए जंगल में ले जाता और दिन ढलते ही उन्हें वापस अस्पताल ले आता और उन्हें थान पर बांधकर अपना खाना तैयार करता और उसे खाकर सो जाता। बीस वर्ष से मैं उसे यही काम करते हुए देख रहा था। प्रतिदिन, नियम-पूर्वक। इस बीच में वह कभी एक दिन के लिए भी बिमार नहीं हुआ। यह बात आश्चर्यजनक अवश्य थी, लेकिन इतनी भी नहीं कि केवल इसीके लिए एक कहानी लिखी जाए। खैर, यह कहानी तो ज़बरदस्ती लिखवाई जा रही है। आठ वर्ष से मैं इसे टालता आया हूं लेकिन यह व्यक्ति नहीं मानता, ज़बरदस्ती से काम ले रहा है। यह अत्याचार मुझपर भी है और आप पर भी। मुझ पर इस-लिए कि मुझे लिखना पड़ रहा है, आपपर इसलिए कि आपको इसे पढ़ना पड़ रहा है। यद्यपि इसमें ऐसी कोई बात है ही नहीं जिसके लिए इतनी सिरदर्दी मोल ली जाए। लेकिन क्या किया जाए, कालू भंगी की मौन दृष्टि के भीतर एक ऐसा विनय निहित है, एक ऐसी विवश मूकता, ऐसी गहराई है कि मुझे उसके बारे में लिखना पड़ रहा है और लिखते-लिखते यह भी

सोचता हूं कि उसके जीवन के सम्बंध में क्या लिखूंगा। कोई पहलू भी तो ऐसा नहीं जो दिलचस्प हो, कोई कोना ऐसा नहीं जो अन्धकारमय हो, कोई कोण ऐसा नहीं जो चुम्बक जैसा आकर्षण रखता हो, फिर न जाने क्यों वह आठ वर्ष से बराबर मेरे मस्तिष्क में खड़ा है। इसमें उसकी हठधर्मी के अतिरिक्त और तो कुछ नजर नहीं आता। जब मैंने 'आंगी' की कहानी में चांदनी के खलिहान सजाए थे और 'थरकानियत' के रोमांचकारी कोण से संसार को देखा था, उस समय भी यह यहीं खड़ा था। जब मैंने रोमांच के आगे पग बढ़ाए और 'हुस्न और हैवान' की रंग-बिरंगी दशाएं देखता हुआ 'टूटे हुए तारों' को छूने लगा उस समय भी यह यहीं खड़ा था। जब मैंने 'बालकोनी' से झांककर अन्न-दाताओं की निर्धनता देखी और पंजाब की धरती पर खून की नदियां बहती देखकर अपने वहशी होने का ज्ञान प्राप्त किया, उस समय भी यह मेरे मस्तिष्क के दरवाज़े पर खड़ा था। चुपचाप, बिना हिले-डुले। मगर अब यह अवश्य जाएगा। अब इसे जाना ही होगा। अब मैं इसके बारे में लिख रहा हूं। भगवान के लिए इसकी नीरस, फीकी-सी कहानी भी सुन लीजिए ताकि यह यहां से दूर दफन हो जाए और मुझे इसकी गंदी संगत से छुटकारा मिल जाए और यदि आज भी मैंने इसके बारे न लिखा और न आपने इसे पढ़ा तो यह आठ वर्ष बाद भी यहीं जमा रहेगा और संभव है जीवन-भर यहीं खड़ा रहे।

लेकिन परेशानी तो यह है कि इसके सम्बन्ध में लिखा क्या जा सकता है? कालू भंगी के मां-बाप भंगी थे और जहां तक मेरा विचार है इसकेसब पूर्वज भंगी थे, और सैकड़ों वर्ष से यहीं रहते चले आए थे। इसी तरह, इसी दशा में। फिर कालू भंगी ने शादी न की थी, उसने कभी प्रेम न किया था, उसने कभी दूर का सफर न किया था, आश्चर्य तो यह है कि वह कभी अपने गांव से बाहर नहीं गया था। वह दिन भर अपना काम करता और रात को सो जाता और प्रातः उठकर फिर अपने काम में जुट जाता। बचपन ही से वह इसी प्रकार करता चला आया था।

हां, कालू भंगी में एक बात अवश्य दिलचस्प थी और वह यह कि उसे अपनी नंगी चिंदिया पर किसी जानवर, जैसे गाय या भैंस की जिह्वा फिराने से बड़ा आनन्द मिलता था। प्रायः दोपहर के समय मैंने उसे देखा कि नीले आकाश तले, हरी घास के मखमल जैसे फ़र्श पर, खुली धूप में वह अस्पताल के पास के एक खेत की मेड़ पर उकड़ू बैठा है और गाय उसका सिर चाट रही है बार-बार। और वह वहीं अपना सिर चटवाते-चटवाते ऊंघ-ऊंघकर सो गया है। उसे इस प्रकार सोते देखकर मेरे हृदय में प्रसन्नता का एक विचित्र-सा भाव उजागर होने लगता था और विश्व के थके-थके, स्वप्निल सौंदर्य का भ्रम होने लगता था। मैंने अपने छोटे-से जीवन में संसार की सुन्दरतम स्त्रियां, नवजात कलियां, संसार के सुन्दरतम दृश्य देखे हैं, लेकिन न जाने क्यों ऐसी सरलता, ऐसा सौंदर्य, ऐसी शान्ति किसी दृश्य में नहीं देखी। जब मैं सात वर्ष का था और वह खेत बहुत बड़ा और विस्तृत दिखाई देता था और आकाश बहुत नीला और निर्मल और कालू भंगी की चिंदिया शीशे की तरह चमकती थी; और गाय की जिह्वा धीरे-धीरे उसकी चिंदिया चाटती हुई, जैसे उसे सहलाती हुई, कुसर-कुसर का स्वप्निल स्वर उत्पन्न करती जाती थी। जी चाहता था मैं भी उसी तरह अपना सिर घुटाकर उस गाय के नीचे बैठ जाऊं और ऊंघता-ऊंघता सो जाऊं। एक बार मैंने ऐसा करने की कोशिश भी की तो पिताजी ने मुझे वह पीटा, वह पीटा; और मुझसे अधिक कालू भंगी को वह पीटा कि मैं भय से चीखने लगा कि कालू भंगी उनकी ठोकरों से मर न जाए, लेकिन कालू भंगी को इतनी मर खाकर भी कुछ न हुआ, दूसरे दिन वह नियमानुसार झाड़ू देने के लिए हमारे बंगले में मौजूद था!

कालू भंगी को जानवरों से बड़ा लगाव था, हमारी गाय तो उसपर जान छिड़कती थी और कम्पौंडर साहब की बकरी भी। यद्यपि बकरी बड़ी बेवफा होती है, नारी से भी अधिक, लेकिन कालू भंगी की बात और थी। उन दोनों पशुओं को पानी पिलाए तो कालू भंगी, चारा खिलाए तो कालू भंगी, जंगल में चराने ले जाए तो कालू भंगी। वे उसके एक-एक संकेत

को इस प्रकार समझ जातीं जैसे कोई व्यक्ति किसी मनुष्य के बच्चे की बातें समझता है। मैं कई बार कालू भंगी के पीछे गया हूं, जंगल के रास्ते में वह उन्हें बिलकुल खुला छोड़ देता था लेकिन फिर भी गाय और बकरी दोनों उसके साथ क़दम से क़दम मिलाए चले आते थे—जैसे तीन मित्र सैर करने निकले हों। रास्ते में गाय ने हरी घास देखकर मुंह मारा तो बकरी भी झाड़ी से पत्तियां खाने लगी और कालू भंगी है कि सुम्बलू तोड़-तोड़कर खा रहा है और बकरी के मुंह में डाल रहा है और स्वयं भी खा रहा है; और आप ही आप बातें कर रहा है और उससे भी बराबर बातें किए जा रहा है और वे दोनों पशु भी गुर्राकर, कभी कान फटफटाकर, कभी पांव हिलाकर, कभी दुम दबाकर, कभी नाचकर, कभी गाकर, हर प्रकार से उसकी बातों में भाग ले रहे हैं। अपनी समझ में तो कुछ नहीं आता कि ये लोग क्या बातें करते थे। फिर कुछ क्षणों के बाद कालू भंगी आगे चलने लगता तो गाय भी चरना छोड़ देती और बकरी झाड़ी से परे हट जाती और कालू भंगी के साथ-साथ चलने लगती। आगे कहीं छोटी-सी नदी आती या कोई नन्हा-सा चश्मा तो कालू भंगी वहीं बैठ जाता, बल्कि लेटकर वहीं चश्मे के स्तर से अपने ओंठ मिला देता और पशुओं की तरह पानी पीने लगता और उसी प्रकार वे दोनों पशु भी पानी पीने लगते क्योंकि बेचारे मनुष्य तो थे नहीं कि ओंठ से पी सकते। उसके बाद यदि कालू भंगी घास पर लेट जाता तो बकरी भी उसकी टांगों के पास अपनी टांगें सिकोड़कर प्रार्थना करने के से ढंग पर बैठ जाती, और गाय तो इस प्रकार उसके निकट ही बैठती कि मुझे मालूम होता कि वह कालू भंगी की पत्नी है और अभी-अभी खाना पकाकर हटी है। उसकी हर नज़र में, और चेहरे के हर उतार-चढ़ाव में एक शांतिपूर्ण गृहस्थी-जीवन झलकने लगता और जब वह जुगाली करने लगती तो मुझे मालूम होता जैसे कोई बड़ी सुघड़ पत्नी करोशिया लिए कशीदाकारी कर रही है, या कालू भंगी के लिए स्वैटर बुन रही है।

इस गाय और बकरी के अतिरिक्त एक लंगड़ा कुत्ता था जो कालू

भंगी का बड़ा घनिष्ठ मित्र था। वह लंगड़ा था इस कारण ही अन्य कुत्तों के साथ अधिक चल-फिर न सकता था और इसी कारण प्रायः अन्य कुत्तों से पिटता और भूखा रहता और घायल रहता था। कालू भंगी प्रायः उसकी मरहम-पट्टी और पालन-पोषण में लगा रहता। कभी तो उसे साबुन से नहलाता, कभी उसकी चिचड़ियां दूर करता और कभी उसे मक्की की रोटी का सूखा टुकड़ा देता; लेकिन यह कुत्ता बड़ा स्वार्थी था। दिन में केवल दो बार कालू भंगी से मिलता, दोपहर को और शाम को। और खाना खाकर और घाव पर मरहम लगवाकर फिर घूमने के लिये चल देता। कालू भंगी और उस लंगड़े कुत्ते की मुलकात बड़ी संक्षिप्त होती थी, लेकिन बड़ी दिलचस्प। मुझे तो वह कुत्ता एक आंख न भाता था लेकिन कालू भंगी उसे बड़े आदर से मिलता।

उसके अतिरिक्त कालू भंगी का जंगल के हर पशु-पक्षी से परिचय था। रास्ते में उसके पांव तले कोई कीड़ा आ जाता तो वह उसे उठाकर झाड़ी पर रख देता। कहीं कोई नेवला बोलने लगता तो वह उसकी बोली में उसका उत्तर देता। तीतर, रतगल्ला, गुटारी, लालचिड़ा हर पक्षी की बोली वह जानता था। इस दृष्टि से वह राहुल सांकृत्यायन से भी बड़ा पण्डित था। कम से कम मेरे जैसे सात वर्ष के बालक की दृष्टि में तो वह मुझे अपने माता-पिता से भी अच्छा मालूम होता था; और फिर वह मक्की का भुट्टा ऐसा मज़ेदार तैयार करता था और उसे इस तरह हल्की आंच पर भूनता था जैसे वह वर्षों से उस भुट्टे को जानता हो। एक मित्र की तरह वह भुट्टे से बातें करता। इस नरमी और प्यार से उससे पेश आता जैसे वह भुट्टा उसका अपना सम्बन्धी या सगा भाई हो। और लोग भी भुट्टा भूनते थे लेकिन वह बात कहां। ऐसे कच्चे बेस्वाद और मामूली से भुट्टे होते थे वे कि उन्हें बस मक्की का भुट्टा ही कहा जा सकता था, लेकिन कालू भंगी के हाथों में पहुंचकर वही भुट्टा कुछ का कुछ हो जाता; और जब वह आग पर सिककर बिलकुल तैयार हो जाता तो बिलकुल एक नई-नवेली दुल्हिन की तरह, शादी का जोड़ा पहने, सुनहला-सुनहला

चमकता नज़र आता। मेरे खयाल में स्वयं भुट्टे को यह अनुमान हो जाता था कि कालू उससे कितना प्रेम करता है, अन्यथा प्रेम के बिना उस निर्जीव वस्तु में उतनी सुन्दरता कैसे उत्पन हो सकती थी। मुझे कालू भंगी के हाथ के सिके हुए भुट्टे खाने में बड़ा आनन्द आता था और मैं उन्हें बड़े मज़े में छुप-छुपकर खाता था। एक बार पकड़ा गया तो बड़ी ठुकाई हुई। बेचारा कालू भी पिटा, लेकिन दूसरे दिन वह फिर बंगले पर झाड़ू लिए उसी तरह हाज़िर था।

और बस कालू भंगी के सम्बन्ध में और कोई दिलचस्प बात याद नहीं आ रही। मैं बचपन से जवानी में आया और कालू भंगी वैसे का वैसा रहा। मेरे लिए अब वह कम दिलचस्प हो गया था, बल्कि यों कहिए कि मुझे उससे किसी प्रकार की दिलचस्पी न रही थी। हां, कभी-कभी उसका व्यक्तित्व मुझे अपनी ओर खैंचता। यह उन दिनों की बात है जब मैंने नया-नया लिखना शुरू किया था। मैं अध्ययन के लिए उससे प्रश्न करता और नोट लेने के लिए फांउनटेन पैन और पैड साथ रख लेता।

"कालू भंगी ! तुम्हारे जीवन में कोई खास बात है ?"

"कैसी छोटे साहब ?"

"कोई खास बात, अजीब, अनोखी, नई।"

"नहीं छोटे साहब !" (यहां तक तो निरीक्षण कोरा रहा। अब आगे चलिए, संभव है ......!"

"अच्छा, तुम यह बताओ, तुम तनख़ाह लेकर क्या करते हो ?" हमने दूसरा सवाल पूछा।

"तनखाह लेकर क्या करता हूं।" वह सोचने लगता, "आठ रुपये मिलते हैं मुझे" वह फिर उंगलियों पर गिनने लगता, "चार रुपये का आटा लाता हूं...एक रुपये का नमक, एक रुपये का तम्बाकू, आठ आने की

चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला, कितने रुपये हो गए, छोटे साहब?"

"सात रुपये।"

"हां, सात रुपये! हर महीने एक रुपया बनिये को देता हूं, कपड़े सिलवाने के लिये उससे कर्ज़ लेता हूं ना? साल में दो जोड़े तो चाहिएं। और छोटे साहब! कहीं बड़े साहब एक रुपया तन्खाह में बढ़ा दें तो मजा आ जाए।"

"वह कैसे?"

"घी लाऊंगा एक रुपये का और मक्की के पराठे खाऊंगा। कभी पराठे नहीं खाए मालिक! बड़ा जी चाहता है।"

अब बोलिए इन आठ रुपयों पर कोई क्या कहानी लिखे?

फिर जब मेरी शादी हो गई, जब रातें जवान और चमकीली होने लगतीं और निकट के जंगल से शहद और कस्तूरी और जंगली गुलाब की लपटें आने लगतीं, और हिरन चौंकड़ियां भरते हुए दिखाई देते, और तारे झुकते-झुकते कानों में खुसर-फुसर करने लगते, और किसीके रसीले होंठ,आने वाले चुम्बनों का खयाल करके कांपने लगते। उस समय भी मैं कालू भंगी के सम्बन्ध में कुछ लिखना चाहता और पेन्सिल-कागज़ लेकर उसके पास जाता।

"कालू भंगी, तुमने ब्याह नहीं किया?

"नहीं छोटे साहब!"

"क्यों?"

इस इलाके में मैं ही एक भंगी हूं और दूर-दूर तक कोई भंगी नहीं है छोटे साहब! फिर हमारी शादी कैसे हो सकती है?"

(लीजिए यह रास्ता भी बन्द हुआ)

"तुम्हारा जी नहीं चाहता कालू भंगी?" मैंने दुबारा कोशिश करके कुरेदना चाहा।

"क्या साहब?"

"प्रेम करने को जी चाहता है तुम्हारा ? शायद किसीसे प्रेम किया होगा तुमने, जभी तुमने अब तक शादी नहीं की।"

"प्रेम क्या होता है छोटे साहब ?"

"औरत से प्रेम करते हैं लोग।"

"प्रेम कैसे करते हैं साहब ? शादी तो ज़रूर करते हैं सब लोग। बड़े लोग प्रेम भी करते होंगे छोटे साहब ! लेकिन हमने नहीं सुना, वह जो कुछ आप कह रहे हैं। रही शादी की बात, यह मैंने आपको बता दी है। कैसे होती मेरी शादी आप बताइए ?"

(हम क्या बताएं खाक ?)

"तुम्हें दुख नहीं है कालू भंगी ?"

"किस बात का दुख छोटे साहब ?"

हारकर मैंने उसके सम्बन्ध में लिखने का विचार छोड़ दिया।

आठ वर्ष हुए कालू भंगी मर गया। वह, जो कभी बीमार नहीं हुआ था, अचानक ऐसा बीमार पड़ा कि फिर कभी खाट से न उठा। उसे हस्पताल में दाखिल कर लिया गया था। वह अलग वार्ड में रहता था। कम्पौंडर दूर से उसके कंठ में दवा उंडेल देता और एक चपरासी उसके लिए खाना रख आता। वह अपने बरतन स्वयं साफ़ करता, अपना बिछौना स्वयं बिछाता, अपना मल-मूत्र स्वयं साफ करता और जब वह मर गया तो उसकी लाश को पुलिस वालों ने ठिकाने लगा दिया क्योंकि उसका कोई वारिस नहीं था। वह हमारे यहां बीस वर्ष से रहता था लेकिन हम कोई उसके सम्बन्धी थोड़े थे, इसलिए उसका अन्तिम वेतन भी सरकार ने ज़ब्त कर लिया क्योंकि उसका कोई वारिस नहीं था। और जब वह मरा उस दिन भी कोई विशेष बात न हुई। प्रतिदिन की तरह उस दिन भी अस्पताल खुला। डाकटर साहब ने नुस्खे लिखे, कम्पौंडर ने तैयार किए, रोगियों

ने दवा ली और घर लौट गए। फिर रोज़ की तरह अस्पताल भी बन्द हुआ और घर आकर हम सबने आराम से खाना खाया। रेडियो सुना और लिहाफ ओढ़कर सो गए। प्रातः उठे तो पता चला कि पुलिस वालों ने दया-भाव से कालू भंगी की लाश ठिकाने लगा दी, इसपर डाक्टर साहब की गाय ने और कम्पौंडर साहब की बकरी ने दो दिन तक न कुछ खाया न कुछ पिया, और वार्ड के बाहिर खड़े-खड़े बेकार चिल्लाती रहीं। पशुओं की जाति थी ना आखिर !

अरे तू झाड़ू लेकर आ पहुंचा ? आखिर तू चाहता क्या है, बता ?

कालू भंगी अभी तक वहां खड़ा है।

क्यों भई, अब तो मैंने सब कुछ लिख दिया वह सब कुछ जो मैं तुम्हारे सम्बन्ध में जानता हूं। अब भी यहीं खड़े परेशान कर रहे हो, भगवान के लिए चले जाओ। क्या मुझसे कुछ छूट गया है, कोई भूल हो गई है ? तुम्हारा नाम कालू, पेशा भंगी, इस इलाके से कभी बाहर नहीं गए, विवाह नहीं किया, प्रेम नहीं किया, जीवन में कोई विशेष घटना नहीं, कोई अचंभा नहीं—जैसे प्रेमिका के होंठों में होता है, अपने बच्चे के प्यार में होता है, गालिब के काव्य में होता है। कुछ भी तो नहीं हुआ तुम्हारे जीवन में ! फिर मैं क्या लिखूं—और क्या लिखूं। तुम्हारा वेतन आठ रुपये, चार रुपये का आटा, एक रुपये का नमक, एक रुपये का तम्बाकू, आठ आने की चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला, सात रुपये और एक रुपया बनिये का—आठ रुपये हो गए। लेकिन आठ रुपये में कहानी नहीं होती, आजकल तो पचास, पचास, सौ में कहानी नहीं होती लेकिन आठ रुपये में तो कोई कहानी हो ही नहीं सकती। फिर मैं तुम्हारे बारे में क्या लिख सकता हूं ? अब खिलजी ही को लो, अस्पताल में कम्पौंडर है, बत्तीस

रुपये वेतन पाता है, पुरखाओं में निचले मध्यम वर्ग के मां-बाप मिले थे, जिन्होंने मिडिल तक पढ़ा दिया । फिर खिलजी ने कम्पौंडरी की परीक्षा पास कर ली । वह जवान है, उसके चेहरे पर रंग है । यह जवानी यह रंगत कुछ चाहती है । वह श्वेत लट्ठे की सलवार पहन सकता है, कमीज पर कलफ़ लगा सकता है । बालों में सुगन्धित तेल लगाकर कंघी कर सकता है । सरकार ने उसे रहने के लिए एक छोटा-सा क्वार्टर भी दे रखा है । डाक्टर चूक जाए तो फीस भी झाड़ लेता है और सुन्दर रोगिणियों से प्रेम भी कर लेता है । वह नूरां और खिलजी की घटना तुम्हें याद होगी । नूरां 'भीता' से आई थी, सोलह-सत्रह वर्ष की अल्हड़ जवानी, चार कोस से ही सिनेमा के रंगीन विज्ञापन की तरह नज़र आ जाती थी । बड़ी मूर्ख थी वह । अपने गांव के दो नौजवानों का प्रेम पाए बैठी थी । जब नम्बरदार का लड़का सामने आ जाता तो उसकी हो जाती और जब पटवारी का लड़का दिखाई देता तो उसका मन उधर मुड़ने लगता । और वह कोई निश्चय ही न कर पाती । अधिकतर लोग प्रेम को एक बिलकुल स्पष्ट और निश्चित बात मानते हैं यद्यपि वास्तव में यह बिलकुल अनिश्चित और असमंजस की हालत लिए होता है अर्थात् प्रेम उससे भी है, इससे भी है; और फिर शायद कहीं नहीं है, और है भी तो ऐसा सामयिक कि इधर नज़र चूकी, उधर प्रेम गायब । सचाई अवश्य होती है लेकिन स्थिरता नहीं होती । इसीलिए तो नूरां कोई निश्चय न कर पाती थी । उसका हृदय नम्बरदार के बेटे के लिए भी धड़कता था और पटवारी के पूत के लिए भी । उसके होंठ नम्बरदार के बेटे के होठों से मिल जाने के लिए बेचैन हो उठते, और पटवारी के पूत की आंखों में आंखें डालते ही उसका हृदय यों कांपने लगता जैसे चारों ओर समुद्र हो, चारों ओर लहरें हों, और एक अकेली नाव हो; और नाज़ुक-सी पतवार हो और चारों ओर कोई न हो और नाव डोलने लगे, हौले-हौले डोलती जाए और नाजुक-सी पतवार नाजुक-से हाथों में चलती-चलती थम जाए और श्वास रुकते-रुकते रुक-सा जाए, और आंखें झुकती-झुकती झुक-सी जाएं और

केश बिखरते-बिखरते बिखर-से जाएं, और लहरें, घूम-घूमकर घूमती हुई मालूम हों, और बड़े-बड़े दायरे फैलते-फैलते फैल जाएं, और फिर चारों ओर सन्नाटा फैल जाए, और हृदय एकदम धक् से रह जाए, और कोई अपनी बाहों में भींच ले। हाय! पटवारी के बेटे को देखने से ऐसी ही हालत होती थी नूरां की और वह कोई निश्चय न कर पाती थी। नम्बरदार का बेटा, पटवारी का बेटा, पटवारी का बेटा, नम्बरदार का बेटा। वह दोनों को वचन दे चुकी थी, दोनों से शादी करने का इक़रार कर चुकी थी। दोनों पर मर मिटी थी। परिणाम यह हुआ कि वे आपस में लड़ते-लड़ते लहूलुहान हो गए और जब जवानी का बहुत-सा लहू रगों से निकल गया तो उन्हें अपनी मूर्खता पर बहुत क्रोध आया; और पहले नम्बरदार का बेटा नूरां के पास पहुंचा और अपनी छुरी से उसका वध करना चाहा, और नूरां की भुजा पर घाव आए और फिर पटवारी का पूत आया और उसने उसकी जान लेनी चाही, और नूरां के पांव पर घाव आए परन्तु वह बच गई, क्योंकि वह समय पर अस्पताल लाई गई थी और यहां उसकी चिकित्सा शुरू हो गई। आखिर अस्पतालवाले भी मनुष्य होते हैं। सुन्दरता दिलों पर प्रभाव डालती है, इंजैक्शन की तरह, उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव अवश्य होता है। किसीपर कम, किसीपर अधिक। डाक्टर साहब पर कम था, कम्पौंडर पर अधिक था। खिलजी नूरां की सेवा में तन-मन से लगा रहा। नूरां से पहले बेगमां, बेगमां से पहले रेशमां और रेशमां से पहले जानकी के साथ भी ऐसा ही हुआ था, लेकिन वह खिलजी के असफल प्रेम थे, क्योंकि वे औरतें ब्याही हुई थीं। रेशमां के तो एक बच्चा भी था, बच्चे के अतिरिक्त माता-पिता थे, और पति थे; और पतियों की दुश्मन नज़रें थीं जो जैसे खिलजी की छाती में घुसकर उसकी आकांक्षाओं के अंतिम कोने तक पहुंच जाना चाहती थीं। खिलजी क्या कर सकता? विवश होकर रह जाता। उसने बेगमां से प्रेम किया, रेशमां और जानकी से भी। वह प्रतिदिन बेगमां के भाई को मिठाई खिलाता था। रेशमां के नन्हें-से बेटे को दिन भर उठाए फिरता था। जानकी को फूलों से बड़ा प्रेम था। वह प्रतिदिन

प्रातः उठकर मुंह-अंधेरे जंगल की ओर चला जाता और सुन्दर लाला के गुच्छे तोड़कर उसके लिए लाता। सर्वोत्तम ओषधियां, सर्वोत्तम खाने, सर्वोत्तम देखभाल, लेकिन समय आने पर जब बेगमां अच्छी हुई तो रोते-रोते अपने पति के साथ चली गई; और जब रेशमां अच्छी हुई तो अपने बेटे को लेकर चली गई; और जानकी अच्छी हुई तो चलते समय उसने खिलजी के दिए हुए फूल अपनी छाती से लगाए, उसकी आंखें भर आईं और फिर उसने अपने पति का हाथ थाम लिया और चलते-चलते घाटी की ओट में ग़ायब हो गई। घाटी के अंतिम छोर पर पहुंचकर उसने मुड़कर खिलजी की ओर देखा और खिलजी मुंह फेरकर वार्ड की दीवार के सहारे से लगकर रोने लगा। रेशमां के विदा होते समय भी वह उसी प्रकार रोया था। बेगमां के जाते समय भी उसी प्रकार, उसी दुख के वशीभूत होकर रोता था लेकिन खिलजी के लिए न रेशमां रुकी, न बेगमां, न जानकी; और अब कितने वर्षों के बाद नूरां आई थी और उसका हृदय उसी प्रकार धड़कने लगा था, और यह धड़कन दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली जाती थी। शुरू-शुरू में तो नूरां की हालत बुरी थी, उसका बचना कठिन था, लेकिन खिलजी की अनथक कोशिशों से घाव भरते चले गए, पीप कम होती गई, दुर्गन्ध दूर होती गई, सूजन गायब होती गई। नूरां की आंखों में चमक और उसके सफ़ेद चेहरे पर स्वास्थ्य की लालिमा आती गई; और जिस दिन खिलजी ने उसकी बांहों से पट्टी उतारी तो नूरां विनय-भाव के वशीभूत हो उसकी छाती से लिपटकर रोने लगी, और जब उसके पांव की पट्टी उतरी तो उसने अपने हाथ और पांव में मेंहदी रचाई और आंखों में काजल लगाया और बालों की लटें संवारी तो खिलजी का हृदय प्रसन्नता से चौकड़ियां भरने लगा। नूरां खिलजी को दिल दे बैठी थी। उसने खिलजी से शादी का वायदा कर लिया था। नम्बरदार का बेटा और पटवारी का बेटा दोनों बारी-बारी कई बार उसे देखने के लिए, उससे क्षमा मांगने के लिए, उससे शादी का वचन लेने के लिए अस्पताल आए थे, और नूरां उन्हें देखकर हर बार घबराकर कांपने लगती, मुड़-मुड़कर देखने लगती और उस समय

तक उसे चैन न पड़ता जब तक कि वे लोग चले न जाते; और खिलजी उसके हाथ को अपने हाथ में न ले लेता। और जब वह बिल्कुल अच्छी हो गई तो सारा गांव, उसका अपना गांव उसे देखने के लिए उमड़ पड़ा। गांव की छोरी अच्छी हो गई थी। डाक्टर साहब और कम्पौंडर साहब की कृपा से, और नूरां के मां-बाप बिछे जाते थे; और आज तो नम्बरदार भी आया था और पटवारी भी, और वे दोनों मूर्ख लड़के भी, जो अब नूरां को देख-देखकर अपने किए पर पछता रहे थे। और फिर नूरां ने अपनी मां का सहारा लिया और काजल में तैरती हुई डबडबाई आंखों से खिलजी की ओर देखा और चुपचाप अपने गांव चली गई। सारा गांव उसे लेने आया था, और उसके क़दमों के पीछे-पीछे नम्बरदार के बेटे और पटवारी के बेटे के क़दम थे और ये क़दम और दूसरे क़दम और दूसरे क़दम और सैकड़ों क़दम जो नूरां के साथ चल रहे थे, खिलजी की छाती की घाटी पर से गुज़रते गए, और पीछे एक धुंधला, धूल से अटा हुआ मार्ग छोड़ दिए।

और कोई वार्ड की दीवार के साथ लगकर सिसकियां लेने लगा।

बड़ा सुन्दर रोमांच-भरा जीवन था। खिलजी बत्तीस रुपया वेतन पाता था, पन्द्रह-बीस रुपया ऊपर से कमा लेता था। खिलजी जो जवान था, जो प्रेम करता था, जो एक छोटे-से बंगले में रहता था, जो अच्छे लेखकों की कहानियां पढ़ता और प्रेम में रोता था। कैसा दिलचस्प, रोमांच और प्रसन्नता-भरा जीवन था खिलजी का, लेखक कालू भंगी के सम्बन्ध में मैं क्या कह सकता हूं, सिवाय इसके कि—

(१) कालू भंगी ने बेगमां की लहू और पीप से भरी हुई पट्टियां धोईं।

(२) कालू भंगी ने बेगमां का मल-मूत्र साफ़ किया।

(३) कालू भंगी ने रेशमां की गंदी पट्टियां साफ़ कीं।

(४) कालू भंगी रेशमां के बेटे को मक्की के भुट्टे खिलाता था।

(५) कालू भंगी ने जानकी की गंदी पट्टियां धोईं और प्रतिदिन उसके कमरे में फ़िनायल छिड़कता रहा और शाम से पहले वार्ड की खिड़की बन्द करता रहा और अंगीठी में लकड़ियां जलाता रहा, ताकि जानकी को शीत

न लगे।

(६) कालू भंगी नूरां का पाखाना उठाता रहा—तीस मास दस दिन तक।

कालू भंगी ने रेशमां को जाते हुए देखा, उसने जानकी को जाते हुए देखा, उसने नूरां को जाते हुए देखा, लेकिन वह कभी दीवार से लगकर नहीं रोया। वह पहले तो कुछ क्षणों के लिए हैरान हो जाता, फिर उसी आश्चर्य से अपना सिर खुजाने लगता और जब कोई बात उसकी समझ में न आती तो वह अस्पताल के नीचे खेतों में चला जाता और गाय से अपनी चिंदिया चटवाने लगता। परन्तु इसका वर्णन तो मैं पहले कर चुका हूं, फिर और क्या लिखूं तुम्हारे बारे में कालू भंगी? सब कुछ तो कह दिया जो कुछ कहना था, जो कुछ तुम रहे हो। तुम्हारा वेतन बत्तीस रुपया होता, तुम मिडिल पास या फेल होते, तुम्हें विरासत में कुछ सभ्यता, संस्कृति, कुछ थोड़ा-सा मानव उल्लास और उस उल्लास का शिखर मिला होता तो मैं तुम्हारे सम्बंध में कोई कहानी लिखता। अब तुम्हारे आठ रुपये में मैं क्या कहानी लिखूं। हर बार उन आठ रुपयों को उलट-फेर कर देता हूं। चार रुपये का आटा, एक रुपये का नमक, एक रुपये का तम्बाकू आठ आने की चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला—सात रुपये और एक रुपया बनिये का। आठ रुपये हो गए। कालू भंगी, तुम्हारी कहानी कैसे बनेगी ? तुम्हारी कहानी मुझसे न लिखी जाएगी। चले जाओ, देखो मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ता हूं।

लेकिन यह मनहूस अभी तक यहीं खड़ा है। अपने उखड़े पीले-पीले गंदे दांत निकाले, अपनी फूटी हंसी हंस रहा है।

तू ऐसे नहीं जाएगा। अच्छा भाई, अब मैं फिर अपनी स्मृतियों की राख कुरेदता हूं। शायद तेरे लिए अब मुझे बत्तीस रुपयों से नीचे उतरना

पड़ेगा और बखतियार चपरासी का सहारा लेना पड़ेगा। बखतियार चपरासी को पन्द्रह रुपये वेतन मिलता है, और जब कभी वह डाक्टर या कम्पौंडर या वैक्सीनेटर के साथ दौरे पर जाता है तो उसे डबल भत्ता और सफ़र खर्च भी मिलता है। फिर गांव में उसकी अपनी ज़मीन भी है, और एक छोटा-सा मकान भी, जिसके तीन ओर चीड़ के ऊंचे-ऊंचे वृक्ष हैं और चौथी ओर एक सुन्दर-सा बग़ीचा है, जो उसकी पत्नी ने लगाया है। उसमें उसने कड़म का साग बोया है, और पालक और मूलियां, और सलजम, और हरी मिरचें, और बड़ी इल्लें, और कद्दू—जो गरमियों की धूप में सुखाए जाते हैं और सरदियों में जब बरफ़ पड़ती है और हरियाली मर जाती है, तो खाए जाते हैं। बखतियार की पत्नी यह सब कुछ जानती है। बखतियार के तीन बच्चे हैं, उसकी बूढ़ी मां है जो सदैव अपनी बहू से झगड़ा करती रहती है। एक बार बखतियार की मां अपनी बहू से झगड़ा करके घर से चली गई थी। उस दिन आकाश पर गहरे बादल छाए हुए थे, और मारे पाले के दांत बज रहे थे और घर से बखतियार का बड़ा लड़का अम्मां के चले जाने की सूचना लेकर दौड़ता-दौड़ता अस्पताल आया था और बखतियार उसी समय अपनी मां को वापस लाने के लिए कालू भंगी को साथ लेकर चल दिया था। वे दिनभर उसे जंगल में ढूंढ़ते रहे—वह और कालू भंगी और बखतियार की पत्नी; बहू अपने किए पर पछता रही थी। अपनी सास को ऊंची आवाज़ें देने के साथ-साथ रोती जाती थी। आकाश पर बादल छाए हुए थे और सरदी से हाथ-पांव सुन्न हुए जाते थे और पांव-तले चीड़ के सूखे झूमर फिसले जाते थे। फिर वर्षा शुरू हो गई, फिर बरफ़ पड़ने लगी और फिर चारों ओर गहरी चुप्पी छा गई, और जैसे एक गहरी मृत्यु ने अपने दरवाज़े खोल दिए हों, और बरफ़ की परियों को पंक्ति में बाहर धरती पर भेज दिया हो, बरफ़ के गाले धरती पर गिरते गए, मौन, शान्त, सफेद मखमल घाटियों, वादियों और चोटियों पर फैल गई।

"अम्मां!" बखतियार की पत्नी ज़ोर से चिल्लाई।

"अम्मां!" बखतियार चिल्लाया।

"अम्मां!" कालू भंगी ने आवाज़ दी।

जंगल गूंजकर मौन हो गया।

फिर कालू भंगी ने कहा "मेरा ख़्याल है वह 'नक्कर' गई होगी तुम्हारे मामू के पास।"

नक्कर से दो कोस इधर उन्हें बख़तियार की अम्मां मिली। बरफ़ गिर रही थी और वह चली जा रही थी; गिरती, पड़ती, लुढ़कती, थमती, हांफती, कांपती, आगे बढ़ती चली जा रही, और जब बखतिार ने उसे पकड़ा तो एक क्षण के लिए उसने प्रतिरोध किया, फिर वह उसकी बांह में गिरकर मूर्छित हो गई और बखतियार की पत्नी ने उसे थाम लिया और रास्ता-भर वह उसे बारी-बारी से उठाते चले आए—बख़तियार और कालू भंगी। और जब लोग वापस घर पहुंचे तो बिल्कुल अंधेरा हो चुका था और उन्हें वापस आते देखकर बच्चे रोने लगे और कालू भंगी एक ओर होकर खड़ा हो गया और अपना सिर खुजाने लगा, और इधर-उधर देखने लगा। फिर उसने धीरे से दरवाज़ा खोला और वहां से चला आया। हां, बखतियार के जीवन में भी कहानियां हैं, छोटी-छोटी सुन्दर कहानियां लेकिन कालू भंगी! मैं तुम्हारे बारे में और क्या लिख सकता हूं ? मैं अस्पताल के प्रत्येक व्यक्ति के बारे में कुछ न कुछ अवश्य लिख सकता हूं लेकिन तुम्हारे सम्बन्ध में इतना कुछ कुरेदने के बाद भी समझ में नहीं आता कि तुम्हारा क्या किया जाए, भगवान के लिए अब तो चले जाओ, बहुत सता लिया तुमने !

लेकिन मुझे मालूम है यह जाएगी नहीं। इसी प्रकार मेरे मस्तिष्क पर सवार रहेगा और मेरी कहानियों में अपनी गंदी झाड़ू लिए खड़ा रहेगा। अब मैं समझता हूं तू क्या चाहता है ? तू वह कहानी सुनना चाहता है, जो

अभी हुई नहीं, लेकिन हो सकती थी । मैं तेरे पांव से आरम्भ करता हूं । सुन ! तू चाहता है न कि कोई तेरे गंदे खुरदरे पांव धो डाले, धो-धोकर उनसे गंदगी दूर करे । उनकी बिवाइयों पर मरहम लगाए। तू चाहता है तेरे घुटनों की उभरी हुई हड्डियां मांस में छिप जाएं, तेरी जांघों में कठोरता और बल आ जाए । तेरे पेट की मुरझाई हुई सलवटें ग़ायब हो जाएं, तेरी कमजोर छाती के धूल से अटे हुए बाल ग़ायब हो जाएं । तू चाहता है कोई तेरे होंठों में रस डाल दे, उन्हें वाक्-शक्ति प्रदान कर दे । तेरी आंखों में चमक डाल दे, तेरे गालों में लहू भर दे, तेरी चिंदिया को घने बालों से ढक दे, तुझे साफ़-सुथरे वस्त्र दे दे, तेरे इर्द-गिर्द एक छोटी-सी चारदीवारी खड़ी कर दे—सुन्दर ! स्वच्छ !! उनमें तेरी पत्नी राज करे, तेरे बच्चे क़हक़हे लगाते फिरें। जो कुछ तू चाहता है, वह मैं नहीं कर सकता । मैं तेरे टूटे-फूटे दांतों की हंसी पहचानता हूं । जब तू गाय से अपना सिर चटवाता है तो मुझे मालूम होता है कि तू अपनी कल्पना में अपनी पत्नी को देखता है जो तेरे बालों में अपनी उंगलियां फेरकर तेरा सिर सहलाती है, यहां तक कि तेरी आंखें बन्द हो जाती हैं, तेरा सिर झुक जाता है और तू उसकी कृपालु गोद में सो जाता है; और जब तू मेरे लिए आग पर धीरे-धीरे भुट्टा सेंकता है और मुझे जिस प्रेम और स्नेह से वह भुट्टा खिलाता है, तू अपने मस्तिष्क की गहराई में उस नन्हे बच्चे को देख रहा होता है जो तेरा बेटा नहीं है, जो अभी नहीं आया, जो तेरे जीवन में कभी नहीं आएगा लेकिन जिससे तूने एक बाप की तरह प्रेम किया है । तूने उसे गोदियों में खिलाया है । उसका मुंह चूमा है । उसे अपने कंधे पर बिठाकर, संसार भर में घुमाया था । देख लो, यह है मेरा बेटा, यह है मेरा बेटा ! और जब यह सब कुछ तुझे नहीं मिला तो तू सबसे अलग होकर खड़ा हो गया और आश्चर्य से अपना सिर खुजाने लगा और तेरी उंगलियां आप ही आप गिनने लगीं—एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ रुपये। मैं तेरी वह कहानी जानता हूं जो हो सकती थी, लेकिन हो न सकी, क्योंकि मैं कहानीकार हूं । मैं एक नई कहानी घड़ सकता हूं, एक नया मनुष्य नहीं घड़ सकता । उसके लिए मैं

अकेला काफ़ी नहीं हूं, इसके लिए कहानीकार और उसका पढ़नेवाला और डाक्टर और कम्पौंडर और बखतियार और गांव के पटवारी और नम्बरदार और दुकानदार और शासक और राजनीतिज्ञ और मज़दूर और खेतों में काम करनेवाले किसान, प्रत्येक व्यक्ति की, लाखों, करोड़ों, अरबों व्यक्तियों की इकट्ठी सहायता चाहिए। मैं अकेला विवश हूं, कुछ नहीं कर पाऊंगा। जब तक हम सब मिलकर एक दूसरे की सहायता न करेंगे, यह काम न होगा, और तू इसी प्रकार अपनी झाड़ू लिए मेरे मस्तिष्क के दरवाज़े पर खड़ा रहेगा और मैं कोई महान कहानी न लिख सकूंगा जिसमें मानव-आत्मा का पूर्ण उल्लास झलक उठे, और कोई मेमार महान् भवन न बना सकेगा जिसमें हमारी जाति की महानता अपने शिखरों को छू ले, और कोई ऐसा गीत न गा सकेगा जिसकी गहराइयों में विश्व का सारा रहस्य छलक-छलक जाए !

यह भरपूर जीवन सम्भव नहीं, जब तक तू झाड़ू लिए यहां खड़ा है !

अच्छा है, खड़ा रह। फिर शायद कभी वह दिन आ जाए कि कोई तुझसे तेरी झाड़ू छुड़ा दे, और तेरे हाथों को नरमी से थामकर इन्द्रधनुष के उस पार ले जाए।

बहार के बाद

पन्द्रह अगस्त, १९४८ के दिन एक समाचार-पत्र का पहला शीर्षक यह था—

'चर्खा चलाओ, सूत कातो !'
—राजन बाबू का आदेश ।

कांग्रेस के सभापति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने लोगों से अपील की है कि वह स्वतन्त्रता के दिन हंगामा न करें बल्कि गंभीरतापूर्वक, ध्यान में मग्न हो स्वतंत्रता-दिवश मनाएं । उस दिन स्वतंत्रता के मतवाले चर्खा चलाएं, सूत कातें ··

मदनपुरा में सेठ यासीन भाई की मसजिद के पास एक बहुत तंग और अन्धकारमय कोठरी में करीमा जुलाहा रहता था । करीमा जुलाहा और उसकी बूढ़ी पत्नी और उसके पांच बच्चे । सबसे बड़ी बच्ची अठारह वर्ष की थी । उसका नाम फ़िरोज़ा था । करीमा को उसके विवाह की बहुत चिन्ता थी, यह चिन्ता उसे स्वतंत्रता के दिन भी घुलाए डालती थी । करीमा जुलाहा था । जीवन भर उसने चर्खा चलाया था, चर्खे पर काम किया था और सूत की अंटियां घुमाई थीं । यही काम करते-करते उसकी आंखों की ज्योति कमज़ोर हो गई और हाथों में कम्पन आ गया । वह उस अंधेरी कोठरी में पिछले पच्चीस वर्ष से रहता चला आया था, जब वह जवान था । आज उसकी बेटी जवान थी । कोठरी वही थी, मसजिद वही थी । गली का फ़र्श वही था, बग़ल में पतङ्ग और कागज़ी फूल और विक्टोरिया के घोड़ों के लिए कलगी बेचनेवाले की वही दुकान थी । गली से बाहर सेठ यासीन भाई का तीन मंज़िला घर था । सेठ यासीन भाई जो १५

अगस्त, १९४७ से पहले मुसलिमलीगी थे और १५ अगस्त, १९४७ के बाद से पक्के कांग्रेसी बन गए थे। इस मुहल्ले के सभी घर उनके थे। उनका किराया उन्हींको जाता था। यह मसजिद भी उन्होंने बनवाई थी। उनके घर के भीतर तीन पत्नियां थीं, घर के बाहर गैरज में चार मोटरें थीं जो उनकी पत्नियों की तरह सदैव सजी-सजाई नज़र आतीं। सेठ यासीन भाई की आयु पचास वर्ष से ऊपर थी। लालसा पच्चीस से नीचे थी। जब करीम उनके दफ्तर में कोठरी का किराया देने आता और उनसे बुझे-बुझे स्वर में अपनी दु:ख-गाथा कहता तो सेठ मुस्कराकर कहते—हो जाएगा। सब ठीक हो जाएगा। तुम्हारी फ़िरोज़ा का ब्याह भी हो जाएगा। अल्लाह सब ठीक कर देगा। —तो करीमा जुलाहा प्रसन्न हो सेठ यासीन भाई को दुआएं देने लगता।

आज स्वतंत्रता के दिन करीमा के घर में चर्खा भी था और चर्खा चलानेवाले भी। हां सूत कातने के लिए रूई न थी। मिल के कपड़े का भाव चौगुना हो गया था तो रूई का दाम भी उसी भाव से बढ़ गया था लेकिन सूत और हाथ के सूत से बने हुए कपड़े के दाम बहुत कम बढ़े थे क्योंकि मिलों के कपड़े तो सब पहनते हैं, खद्दर कौन पहनता है और वह भी हाथ का बना हुआ। एक गांधीजी पहनते थे। उन्हें एक भारतीय ने मार डाला। एक अब्दुलगफ्फार पहनते थे उन्हें भी कैद कर लिया गया। रूई के दाम बढ़ गए थे। मिल के कपड़े के दाम बढ़ गए थे लेकिन हाथ के बने हुए सूती कपड़े के दाम न चढ़े थे। इसीलिए तो आज करीमा के घर में रूई न थी। उसके घर में पांच बच्चे थे, एक पत्नी थी और एक अठारह वर्ष की बेटी, जिसका उसे विवाह करना था। लेकिन उसके घर में रूई न थी। इसलिए दिये में तेल न था, हांडी में गोश्त न था, चूल्हे में लकड़ी न थी। वह देर तक दरवाज़े पर खड़ा रहा और कांपते हुए हाथों को ऊपर उठाकर मसजिद की ओर ताकता रहा। फिर उसके हाथ धीरे से नीचे गिर गए और उसने फिरोज़ा को आवाज़ दी।

"जी, अब्बा!" फ़िरोज़ा अपनी फटी ओढ़नी को संभालते हुए आंखें

झुकाकर करीमा के सामने खड़ी हो गई ।

"सेठ के घर में चली जा और उनकी बड़ी बीवी से दो रुपये मांग ला। वह तुझसे बहुत प्यार करती है ना । कह देना, अब्बा अगली जुमेरात पर लौटा देंगे ।"

"बहुत अच्छा, अब्बा ।"

फ़िरोज़ा चली गई । करीमा आश्चर्य और भय से उसके भरे हुए शरीर को देखता रहा । अल्लाह वह दिन जल्द आए जब उसकी बेटी के हाथ पीले हों और वह अपने खाविन्द के घर चली जाए । फ़िरोज़ा नज़रों से ग़ायब हो गई और करीमा की नज़रें मसजिद की मीनार की ओर उठ गईं जहां एक कबूतर चक्कर लगा रहा था ।

"अब्बा, अब्बा, हम एक कौमी पतंग लेंगे ।"

यह उसका छोटा लड़का अलीम बोल रहा था । उसकी आयु सात वर्ष की होगी । वह एक फटा हुआ पायजामा पहने हुए था । कमीज़ उसके पास न थी। जब वह बहुत छोटा था तो कमीज़ पहना करता था । पांच वर्ष तक वह केवल कमीज़ पहनता रहा जब छठे वर्ष में आया तो उसे पायजामा पहनने को मिला । अब पायजामा तो मिला लेकिन कमीज़ उतर गई । अलीम ने अब्बा से बहुत कुछ कहा-सुना लेकिन करीमा के पांच बच्चे थे । वह क्या कर सकता था ! उसने साफ़ कह दिया—मियां, या तो कमीज़ पहनो या पायजामा । दोनों चीजें नहीं मिल सकतीं । मुझे दूसरों का तन भी ढकना है। एक तुम्हीं घर भर की संतान नहीं हो ।—अलीम ने हार मान ली । उसने अब तक पायजामा नहीं पहना था इसलिए उसने पायजामा पहनना पसन्द किया । कमीज़ की जगह उसने गले में एक तावीज़ बांध रखा था ।

अलीम ने अब्बा की उंगली पकड़कर कहा—

"कौमी पतंग लेंगे अब्बा ।"

"अरे वह क्या होता है ?"

"वह दुकान पर है, चलिए दिखाएं आपको ।"

दुकान पर काग़ज़ी तिरंगे का पतंग बना हुआ था । तीन आने में

मिलता था। बहुत-से पतंग थे। करीमा ने अगले शुक्रवार के वायदे पर अलीम को पतंग ले दिया और अलीम नाचता-कूदता पतंग झमझमाता हुआ चला गया।

दुकानवाले जुम्मन चाचा ने कहा, "आज आज़ादी का दिन है, क़ौमी पतंग बहुत उड़ रहे हैं।"

करीमा ने मरे हुए स्वर में कहा, "भाई पिछले साल भी यही दिन आया था। मुसलमानों को पाकिस्तान मिला, हिन्दुओं को हिन्दुस्तान। जब कितनी खुशी थी।"

जुम्मा ने मुंह लटका लिया, "हम सोचते थे, अब कुछ होगा। लेकिन भइया कुछ भी तो नहीं हुआ। बस खाली कौमी पतंग उड़ाते हैं। इनकी बिक्री आज भी अच्छी हो रही है," जुम्मन इतना कहकर दो-एक ग्राहकों को माल देने लगा।

करीमा जुम्मन के पीछे-पीछे चला आया। बोला, "खाली-खूली कौमी पतंग उड़ाते हैं लेकिन डोर वही है, मांझा भी वही है। मेरे यार ने कोठरी में सफ़ेदी भी नहीं कराई पच्चीस साल से। हां, किराया बढ़ा दिया है आज़ादी के बाद से।"

जुम्मन बोला, "एक किराये को रोते हो, यहां हर चीज़ के दाम चौगुने, पांचगुने, दसगुने होते जा रहे हैं।"

करीमा बोला, "मैं सोचता था, आज़ादी मिली है। मैं सरकार से अपनी बेटी के ब्याह के लिए रुपया कर्ज़ लूंगा। नई खोली में रहूंगा। एक नया कर्घा खरीदूंगा और बीवी बच्चों के लिए कपड़े सिलवाऊंगा। आज तो हकीम जी की दवा के पैसे भी नहीं हैं और आज सवेरे मैं दिलदार होटल में गया कि उसके मालिक से, अपना मेहरबान है न वह, कुछ रुपये ले आऊं; लेकिन वह कम्बख्त साफ़ इन्कार कर गया। उधर दिलदार होटल में रेडियो पर कोई बोल रहा था कि आज आज़ादी के दिन सब लोग चर्खा कातें। सूत की अंटी तैयार करें। इधर पच्चीस वर्ष से अपना यही धंधा है। तो क्या होता है इससे जी!..."

करीमा योंही बड़बड़ा रहा था कि अलीम भागता हुआ आया, बोला "फ़िरोज़ा बुलाती है।" करीमा दुकान से निकलकर अपने घर चला गया।

फ़िरोज़ा कहने लगी, "सेठ की बीवी ने रुपये नहीं दिए, मैं लौट आई। सीढ़ी पर सेठ यासीन भाई खड़े थे। बोले, 'फ़िरोज़ा कैसे आई हो?' मैंने कहा, 'रुपये लेने आई थी।' बोले, 'कितने रुपये चाहिएं ?' मैंने कहा, 'दो।' बोले, 'यह दस का नोट ले लो।' मैंने ले लिया। वह मुझे खींच कर गुसलखाने में ले जाने लगे। मैं चीखने लगी। बड़ी बीवी बाहर निकल आई। उन्होंने मुझे छोड़ दिया। मैं भागकर चली आई।"

इतना कहने के बाद फ़िरोज़ा ने दस का नोट ज़मीन पर फेंक दिया और अपनी फटी हुई ओढ़नी में मुंह छिपाकर रोने लगी।

फ़िरोज़ा देर तक रोती रही। देर तक करीमा मसजिद की मीनार की ओर देखता रहा। देर तक उन कौमी पतंगों की ओर देखता रहा जो ऊपर आकाश में उड़ानें भर रहे थे। फिर सेठ यासीन भाई की मोटर गुज़रने की आवाज़ आई। वही भौंपू था। करीमा ने मुड़कर देखा। सेठ का ड्राइवर उसे बुला रहा था। करीमा थरथर कांपने लगा। वह हाथ जोड़े हुए मोटर की ओर बढ़ा।

गाड़ी में सेठ बैठे हुए थे। बोले, "करीमा, पहली से कोठरी खाली कर दो।"

करीमा ने कांपते-कांपते कहा, "बहुत अच्छा सेठ।"

सेठ की गाड़ी चली गई, जिसके आगे तिरंगा लहरा रहा था, जिसपर कभी सब्ज़ हलाली निशान का झंडा होता था। गाड़ी चली गई और सेठ को भी ले गई जिन्होंने खद्दर का अचकन और खद्दर का चूड़ीदार पायजामा पहन रखा था। सिर पर कभी जिन्नाह-कैप होती थी, आज खद्दर की टोपी थी। गाड़ी चली गई और जाते-जाते निर्धन जुलाहे की खोली भी ले गई। बूढ़ा करीमा रोने लगा, वह अब कहां जाएगा ? अलीम अपने अब्बा को आंसू पोंछते देखकर डरते-डरते उसके पास आया; बोला—

"अब्बा, हमसे यह पतंग नहीं उड़ता, इसे उड़ा दो ।"

जुलाहे ने क्रोध में आकर अलीम के एक थप्पड़ मारा और क्रोध में भरा हुआ बाज़ार की ओर चला गया, जहां दिलदार होटल था और जहां रेडियो ऊंचे स्वर में कह रहा था—

'चर्खा चलाओ, सूत कातो, आज स्वतंत्रता का शुभ दिन है ।'

पन्द्रह अगस्त १९४८, राजेन बाबू, कांग्रेस के सभापति, का बयान···

··ताज में और ग्रीन में और अन्य बड़े-बड़े होटलों में हज़ारों चर्खे चल रहे थे और सुन्दर औरतें बहुमूल्य वस्त्र पहने हुए चर्खा चला रही थीं और पुरुष सूत की अंटियां तैयार कर रहे थे । मैरीनड्राइव पर बम्बई के सारे लखपति व्यापारी एकत्र थे और समुद्र के किनारे आलती-पालती मारकर चर्खे घुमा रहे थे और रामधुन गा रहे थे । १५ अगस्त, १९४८ को स्वतंत्रता के दिन······

१५ अगस्त, १९४८ के दिन दूसरे समाचारपत्र का पहला शीर्षक यह था—

'काश्मीर में पाकिस्तानी फ़ौजों को हरा दिया गया ।'

'भारतीय फ़ौजों ने महंडर गांव पर अधिकार जमा लिया ।'

'काश्मीर स्वतंत्र रहेगा ।'

'शेख अब्दुल्ला की घोषणा काश्मीरी जनता के हृदय में इस प्रकार···'

···महंडर गांव में दो नाले बहते हैं; एक तो महंडर का नाला है, दूसरा ऊपर पहाड़ों से बहता हुआ आता है । यह धड़े का नाला है क्योंकि यह पहाड़ों की ऊंची घाटियों पर आबाद छोटे-से कस्बे धड़े के निकट से होकर गुज़रता है । जहां पर ये दोनों नाले मिलते हैं वहां एक ऊंचा-सा टीला है जिसके आसपास कोई पचास कनाल ज़मीन होगी । इस टीले पर बूढ़े मिशर का घर है और यह पचास कनाल ज़मीन भी उसीकी है । बूढ़े मिशर के तीन जवान बेटे हैं, दो बहुएं, तीन बेटियां और चार छोटे लड़के । उसकी पत्नी मर चुकी है जिसका उसे बहुत दुःख है । वह अक्सर घर के बाहर अखरोट के वृक्ष के तने से लगकर नीचे बहती हुई महंडर की नदी

को तका करता है जहां उसकी पत्नी के शरीर को जलाया गया था । उसे वह दिन कभी नहीं भूलता । कभी-कभी शाम को खड़े-खड़े वहीं नाले के पास से उसे अपनी पत्नी की चिता फिर से जलती हुई नजर आती है और वह गायत्री का जाप करने लगता है ।

जब काश्मीर का युद्ध छिड़ा तो पहले महंडर गांव पर पाकिस्तान से आए हुए स्वतंत्र पठानों ने कब्ज़ा कर लिया । महंडर के आसपास के सारे गांव मुसलमानों के थे । महंडर में भी मुसलमानों की संख्या अधिक थी। कुछ घर ब्राह्मणों के थे जो हज़ारों वर्ष से बसते चले आ रहे थे और वे ब्राह्मण ही रहे थे और किसीने उन्हें कुछ न कहा था । किसीने उनके धर्म को बदलने की कोशिश न की थी । लोग बिल्कुल शांतिपूर्वक मिल-जुलकर रहते थे ।

लोग शांतिपूर्वक रहते थे । हिन्दू भी और मुसलमान भी, लेकिन शासक नहीं । बूढ़े मिशर को राजा हरदेवसिंह के दिन याद थे जब हरेक से बेगार ली जाती थी । जब गांव से सारा अनाज छीन लिया जाता था और गांव के पुरुषों को कोड़े लगाए जाते थे । हां ब्राह्मणों को छोड़ दिया जाता था । इसके बदले में राजा हरदेवसिंह ब्राह्मण औरतों से सामयिक प्रेम करता था । उसे मिशर की पत्नी गोमां पसंद आ गई थी और राजा ने उसे घर से पकड़ बुलाया था । मिशर कुछ न बोल सका था । राजा के साथ रात व्यतीत करने के बाद भी गोमां उसकी पत्नी रही थी और कोई कुछ न कह सका था । कोई क्या कहता ! राजा साहब ने किसीकी पत्नी हथिया ली तो किसीकी बहू या किसी की बहिन । बात एक ही थी । कोई कुछ कहता तो कैसे ?

राजा हरदेवसिंह बहुत बड़ा जागीरदार था । जनता उससे पनाह मांगती थी । वह महाराज हरिसिंह का सम्बन्धी था । उसके ज़माने में इलाके में कई बार विद्रोह हुआ और किसानों ने स्वतंत्रता चाही लेकिन हर बार यह विद्रोह सख्ती से दबा दिया गया और विद्रोह करने वालों के सिर नेज़ों पर लटकाकर फिराये गए और उनकी खाल खिंचवा दी गई ।

वे दिन बुहुत बुरे थे। परतंत्रता के दिन थे। १५ अगस्त के बाद स्वतंत्रता मिली और महंडर गांव पर स्वतंत्रता के मतवालों ने कब्ज़ा कर लिया। उन्होंने केवल कब्ज़ा ही नहीं किया बल्कि उसके सब निवासियों और उनकी सारी चीज़ों पर कब्ज़ा कर लिया। सभी सुन्दर स्त्रियां चुन-चुनकर स्वतंत्र की गईं और बहुत-सी इलाके से बाहर भेज दी गईं। मिशर की बहुएं और बेटियां कोहाट से परे पहुंच गईं। उसके छोटे बेटे मुसलमान हो गए और बड़े बेटे जंगलों से होते हुए राजौरी भाग गए और राजौरी से होते हुए जम्मू पहुंच गए और यहां वे सेना में भरती हो गए क्योंकि उनके हृदय में बदला लेने की आग सुलग रही थी। केवल बूढ़ा मिशर अपने घर के बाहर अखरोट के वृक्ष के तने से लगा खड़ा रहा और नीचे बहती हुई महंडर नदी के बहाव को तकता रहा जहां उसे अपनी पत्नी की जलती हुई चिता नज़र आती थी। हमला करनेवालों ने मिशर को नहीं मारा। उसे पागल समझकर छोड़ दिया।

जब भारतीय सेना बढ़ते-बढ़ते महंडर गांव के निकट आ गई तो हमला करनेवालों ने नदी के उस पार मोर्चे बांध लिए। इस पार भारतीय सेना का मोर्चा था, उस पार पाकिस्तानी सेना का। ये दोनों सेनाएं १५ अगस्त, १९४७ से पहले एक कहलाती थीं और इनकी लोहा लेने की शक्ति ने पिछले महायुद्ध में बहुत धूम मचा दी थी। अब स्वतंत्रता आ गई थी इसलिए अब एक सेना दो सेनाओं में बंट गई थी और दोनों ने एक दूसरे के आमने-सामने मोर्चे बांध लिए थे। बीच में मिशर का घर था, एक ऊंचे टीले पर, जिसके चारों ओर महंडर की नदी और धड़े की कस्सी बहती थी। दोनों सेनाएं इस जगह को प्राप्त करने के लिए जी-जान की बाज़ी लगा रही थीं। अग्नि-गोले दोनों ओर से आते और टीले की झाड़ियों, वृक्षों को झुलसाते हुए आगे निकल जाते। हिन्दुस्तानी का एक गोला घर पर आ गिरा और बूढ़े मिशर ने अपने पुराने सुन्दर घर की दीवारों को उखड़कर गिरते हुए देखा। पहले घर की दीवारें गिरीं। साथ में छत। फिर कुछ न रहा। चारों ओर धूल-सी उड़ी और गरम-गरम धूल मिशर

के नथनों को झुलसाती गई।

दो दिन की गोला-बारी के बाद भारतीय सेना ने इस टीले पर कब्ज़ा कर लिया। कब्ज़ा करनेवालों में मिशर का अपना बेटा कांशी भी था।

मिशर अखरोट के वृक्ष के पास खड़ा था। कांशी बन्दूक उठाए उसके पास आया। बोला, "चाचा, चाचा।" मिशर ने उसकी ओर देखा और फिर मुंह फेर लिया, "चाचा, मुझे नहीं पहचानते हो, अपने बेटे कांशी को ...?"

मिशर ने कहा, "तुम यहां क्या करने आए हो?"

"मैं महंडर गांव को आज़ाद कराने आया हूं, चाचा।"

मिशर ने कहा, "पहले वह पाकिस्तान के पठान आए थे। वे हमें आज़ाद देखना चाहते थे। एक दिन में मेरे घर की बहुएं गायब हो गईं। अब तुम आए और आज ही मेरा घर जला। तुम भी हमारी आजादी चाहते हो, फिर लड़ाई क्यों है?"

कांशी बोला, "चाचा, आज़ादी······।"

मिशर के मुंह से झाग निकलने लगी, उसकी लाल-लाल आंखों में एक विचित्र-सा वहशीपन आ गया। बोला, "कौन आज़ादी चाहता है, कौन है वह बदमाश······"

"चाचा ··चाचा ···"

"मेरी आज़ादी ले लो, मुझे मेरे खत वापस कर दो, मेरी बहुएं कोहाट से मंगा दो, मेरी लड़कियां मुझे लौटा दो। मेरे घर की दीवारें मुझे दे दो ··"

एकाएक मिशर ने कांशी का हाथ जोर से पकड़ लिया और बोला, "वह देखो, वह देखो, नदी के किनारे चिता जल रही है। एक चिता नहीं है, दो चिताएं है ··हिन्दुस्तान की चिता···पाकिस्तान की चिता···वे सुर्ख-सुर्ख शोले देख रहे हो तुम?"

एक हवाई जहाज़ कस्बे पर पैम्फलेट बरसाता हुआ गुज़र गया। कागज़ का एक टुकड़ा अखरोट की टहनियों पर से फिसलता हुआ मिशर के पांव पर जा गिरा। उसपर लिखा था—

'काशमीर में आज़ादी का जशन।

'श्री नगर में पंडित नेहरू का आगमन।

'शानदार स्वागत, सारा शहर दुल्हन की तरह सजा हुआ और...'

१५ अगस्त, १९४८ को एक समाचारपत्र का पहला शीर्षक यह था—
'पाकिस्तान इस्लामी रियासत है।

रोज़ा न रखने वालों को कोड़े लगाए जाएंगे।

मोची गेट के बाहिर बिरादराने-इस्लाम का अज़ीमउलशान मुजाहिरा जिसमें भाईचारे और अमन......'

हनीफ़ लुधियाना प्रांत के एक गांव छीना का रहनेवाला था। हनीफ़ तेली था। उसका बाप भी तेली था और वह कई सौ वर्ष से उसी गांव में तेलियों का काम करता चला आ रहा था। यह गांव सिक्खों का था। मुसलमानों के घर यही कोई दस-बारह होंगे। फज्जा लोहार, मुहम्मद जुलाहा और हाशिम कुम्हार और आठ-दस कमीनों के घर और बस एक पीर जी का तकिया था और एक छोटी-सी मसजिद और जब १५ अगस्त, १९४७ के बाद फ़िसाद शुरू हुआ तो न वह तकिया रहा न यह मसजिद। उन कमीनों के घर रहे न उन जुलाहों, कुम्हारों और तेलियों के रोज़गार। शुरू-शुरू में तो गांव के सिक्खों ने बड़ी हिम्मत से काम लिया और गिने-चुने मुसलमान घरों की रक्षा की। लेकिन जब दूसरे गांव के सिक्ख आकर उन्हें कोसने लगे और बन्दूकें ले-लेकर चढ़ दौड़े तो गांव वालों के भय का अनुभव हुआ। अतएव उन्होंने मुसलमान घरों पर से अपनी छत्र-छाया उठा ली और उन्हें गांव से निकल जाने नी आज्ञा दी। सिक्ख औरतें अपनी मुसलमान सहेलियों से गले मिल-मिलकर रोईं और गांव की चौहद्दी तक उनसे मिलने के लिए आईं। कुछ सिक्ख उन मुसलमान खानदानों के साथ हो लिए ताकि उन्हें सुरक्षित रूप से लुधियाना पहुंचा दें।

रास्ते में कोट गांव के सिक्खों ने उस काफ़िले पर आक्रमण किया। रक्षा करनेवालों ने योंही सा मुकाबला भी किया लेकिन आखिर वे कहां तक कर सकते थे! परिणामस्वरूप उन सबमें से कुल चौदह जने लुधियाना

स्टेशन पर पहुंच सके। बच्चे मार डाले गए। बूढ़ी औरतें खत्म कर दी गईं बूढ़ी और अधेड़ आयु के बुज़ुर्ग भी चल बसे और नौजवान और जवान औरतें हमला करनेवालों में बांट ली गईं और जब हनीफ़ अपनी पत्नी बलकीस को लेकर लाहौर पहुंचा तो चौदह में से केवल तीन आदमी बचे। एक हनीफ़ एक बलकीस, एक आज़ाद पाकिस्तान! सामने कैम्प था। हनीफ़ कैम्प में पहुंचा जहां हज़ारों आज़ाद मुसलमान अपनी गर्वपूर्ण आज़ादी प्राप्त करके प्रसन्नतावश एकत्र हो रहे थे। उनके पांव तले धरती थी, सिर पर खुला आकाश था और चारों ओर लोहे की बाड़ थी। रज़ाकार हर नये आने वाले से बड़ी सहानुभूति से पेश आते थे और उसे 'मुज़ाहद' का खिताब देते और उसे उसके कैम्प के सैक्शन में ले जाते। हनीफ़ और उसकी पत्नी बलकीस को सैक्शन नम्बर '२' में रखा गया।

'२' सैक्शन में लुधियाना के बहुत-से शरणार्थी एकत्र थे। हर व्यक्ति कैम्प के प्रबन्ध से अप्रसन्न था। स्वतंत्रता पाकर उदास, गम्भीर और दुखित नज़र आता था। दिन भर लड़ाई-झगड़ा होता रहता। कई बार तो शरणार्थियों में आपस में चल जाती। लुधियाना के शरणार्थी जालन्धर वालों को और जालंधर के शरणार्थी अमृतसर वालों को कोसने लगते।

'२' सैक्शन में कुछ रज़ाकार पहुंचे, बोले, "आप लोगों के लिए माडल टाउन बन्दोबस्त किया है।"

"माडल टाउन में?" आंखे प्रसन्नतासे चमकने लगीं।

"जी हां, लेकिन पहले आप लोगों का सामान जाएगा और बच्चे और औरेतें। दूसरे ट्रिप में आप लोग।"

"ठीक है, ठीक है, पहले बच्चे और औरतें, बाद में हम लोग...... माडल टाउन, बात हुई न?"

पहले ट्रिप में बलकीस गई, सकीना बी० ए० गई, अलमास गई, रोशनारा गई और बहुत-सा सामान गया और फिर लारी वापस नहीं आई।

संध्या के समय ढूंढा गया, रात-भर ढूंढा गया, दूसरे दिन, तीसरे दिन,

वे रज़ाकार कहीं नहीं मिले। शरणार्थी क्रोधित हो उठे और कैम्प के बाहर पुलिस और मिलिटरी पर पथराव करने लगे। आखिर गोली चली। दो-तीन शरणार्थी सख्त घायल हुए, लेकिन हनीफ़ जान से मारा गया।

१५ अगस्त, १९४८ को बलकीस लायलपुर के एक जांगली मुसलमान सरदार के पास थी जो एम० एल० ए० भी था और अपने इलाके का सब से बड़ा जागीरदार भी। जागीरदार ने बलकीस को साढ़े सात सौ रुपये में उन नकली रज़ाकारों से खरीदा था। वे रज़ाकार उसके अपने गुण्डे थे। बलकीस उस समय प्याले भर-भरकर उसे शराब पिला रही थी और कमरे में रेडियो कह रहा था—

‘ पाकिस्तान इस्लामी रियासत है।
रोज़ा न रखने वालों को कोड़े लगाए जाएंगे। ’

‘बड़े चौक में राजा गज़नफ़रअलीखां ने तक़रीर फ़रमाई जिसमें उन्होंने महाजरीन को बसाने की स्कीम पर·········’

‘······१५ अगस्त, १९४८ को पाकिस्तान में आने वाले सब महाजरीन बसा दिए गए। कराची, लाहौर, रावलपिंडी, गुजरांवाला, वजीराबाद, कसूर, पाकिस्तान के किसी शहर में अब कोई शरणार्थी कैम्प नहीं है। सब लोग घरों में आबाद कर दिए गए हैं। ज़मीनें किसानों में बांट दी गई हैं। जिस जागीरदार के पास पचास एकड़ से अधिक ज़मीन थी उससे ज़मीन छीनकर निर्धन किसानों और शरणार्थियों में बांट दी गई है। खांड की मिलों, कपड़े की मिलों, तेल के कारखानों, छापाखानों और अन्य औद्योगिक संस्थाओं को पाकिस्तान के मुसलमान मज़दूरों के हवाले कर दिया गया है ताकि वे पूंजीवाद को खत्मकर सकें कि जिसका इस्लाम-धर्म से दूर का भी सम्बन्ध नहीं।’

१५ अगस्त, १९४८ को चौथे समाचार-पत्र का मुख्य शीर्षक यह था—

‘ वृक्ष उगाओ।

‘ स्वतंत्रता के दिन उगाओ।

'स्वतन्त्रता-दिवस पर मध्यप्रान्त के मन्त्री श्रीयुत······सैक्रेटेरियेट के सामने पेड़ लगाएंगे। इस अवसर पर शहर के सब धनाढ्य और उच्च अधिकारी······'

······सेठ सूंगटा के बगीचे का माली एक आंख से काना था लेकिन बहुत होशियार था। बगीचे को उसने ऐसी कारीगरी से सजाया था कि एक बार तो यदि हैंगिंग-गार्डन के माली भी उसे देखें तो उसके हाथ चूम लें। माली कारीगर तो बहुत अच्छा था लेकिन स्वभाव उसका बहुत तेज़ था और बातें बहुत कटु। अपने हां तो कहा जाता है कि जो व्यक्ति अंगहीन हो वह बिल्कुल विश्वास-योग्य नहीं होता। माली के सम्बन्ध में इतना तो नहीं कहा जा सकता लेकिन इसमें भी सन्देह नहीं कि वह बहुत चतुर था, एक काइयां! सेठ सूंगटा स्वयं भी बहुत चालाक थे। स्टाक-एक्सचेंज पर सोने के भाव के माने हुए खिलाड़ी थे और अक्सर अपने मुकाबले पर आने वालों को हानि पहुंचाते थे, लेकिन अपने माली से वे भी दबते थे। कई बार उसे नौकरी से अलग कर देने की धमकी दे चुके थे लेकिन फिर भी उनकी कड़वी लेकिन सच्ची बातों से प्रभावित हो चुप हो जाते।

माली बगीचे में उस समय गुलाब के एक पौधे की नलाई कर रहा था। पौधे की चोटी पर गुलाब की एक मुंहबन्द कली थी, पत्तों में लिपटी हुई, लजाई-लजाई-सी, कोमल कुंवारी कली!

सेठ के धोबी की माली से गाढ़ी छनती थी। उस समय धोबी आकर कहने लगा—

"भाई, आज आज़ादी का दिन है।"

"तो फिर क्या करूं?" माली बोला।

"सेठ कह रहे थे," धोबी बोला, "वह अभी सेक्रेटेरियट जा रहे हैं जहां मन्त्रीजी पेड़ लगाएंगे।"

"तो फिर क्या करूं?"

धोबी ने कहा, "और यह भी कह रहे थे कि आज चार सौ पेड़ लगाए

जाएंगे जिनपर बीस हज़ार रुपया खर्च उठेगा ।"

माली बोला, "मुझे बीस हज़ार रुपये दें, मैं चार सौ तो क्या कम से कम दस हज़ार वृक्ष लगाए देता हूं । लेकिन यह तो किसीने ठेका लिया होगा मेरे यार ने ।"

"अरे नहीं जी," धोबी बोला, "तुम्हें तो हर समय उल्टी ही सूझती है । और सेठ यह भी कह रहे थे कि आज हर भारतीय को एक पेड़ लगाना चाहिए ।"

माली बोला, "मेरा तो जीवन ही पेड़ लगाने और उगाने में बीत गया है फिर भी तो जीवन में कभी रौनक नहीं आई और फिर भइया पेड़ लगाकर कोई क्या करे ? पेड़ लगाए कोई और फल खाए कोई । अब देखो मैं इस बगीचे का माली हूं । इस बगीचे की सारी रौनक अपने दम से है । ये क्यारियां, ये फूल, ये फल, ये पत्तियां, इनकी सारी बहार अपने से है लेकिन यह बहार अपने लिए नहीं है । अपने लिए तो बस जब से पैदा हुए पतझड़ आ गई । मैं फूल खिलाता हूं, वे फूल सेठानी के जूड़े में महकते हैं और मेरी मालन बासी फूल उड़सती है । मैं आम की कलम लगाता हूं और आमों के टोकरे बरफ़खानों में ठण्डे होकर सेठ के खाने की मेज़ पर पहुंचा दिए जाते हैं । अब तुम वृक्ष लगाने को कहते हो, मैं आयु भर यही काम करता आया हूं । लेकिन मैं पूछता हूं, इससे मेरी हालत तो नहीं बदली, मैं कब तक दूसरों के लिए वृक्ष उगाता रहूंगा । तुम कब तक दूसरों के लिए कपड़े धोते रहोगे ?"

"मेरे यार, तुम सनकी हो," धोबी ने माली की पीठ पर हाथ मारकर कहा, "चलो आज स्वतन्त्रता की पहली वर्षगांठ है, आज तो वैसा ही करें जैसा हमारे नेता कहते हैं । वह देखो, वहां जगह नंगी-बूची दिखाई देती है, वहां पेड़ लगाओ । लाल बजरी की सड़क के किनारे जिसके निकट से सेठ की मोटर गुज़रती है ।"

माली ने ध्यान से उस जगह की ओर देखा, फिर सिर हिलाकर कहने लगा, "बात तो तुम पते की कहते हो । आओ, यह आम का पेड़ लगा दें

वहां ।"

दोनों मित्र लाल बजरी वाली सड़क पार करके बगीचे की दूसरी ओर चले गए और छोटा-सा गढ़ा खोदकर उन्होंने ग्राम के उस कोमल-से पौधे को वहां लगा दिया। आम के नये-नये पत्तों की हरियाली में हलका-हलका ऊदापन था और उनसे बड़ी भीनी-भीनी सुगन्ध उठ रही थी।

माली ने कहा, "इस पेड़ के ग्राम बहुत अच्छे होंगे, मीठे, रसदार, अलफांसू को शरमाने वाले। मैं अच्छी तरह.........।"

माली आगे कुछ न कह सका क्योंकि सेठ सूंगटा की तेज़ मोटर शड़ाप से पास से निकल गई और माली और धोबी चौंककर और एकदम उछल कर, अपने आपको बचाते हुए रास्ते से दूर जा खड़े हुए। मोटर बिल्कुल निकट से मोड़ काटती हुई आगे निकल गई और ग्राम के नये पौधे को अपने टायर से कुचलकर टुकड़े-टुकड़े कर गई।

और पन्द्रह अगस्त की रात को माली ने एक बड़ा भयानक स्वप्न देखा। उसने देखा कि अनाज के ढेर ऊपर आकाश तक चले गए हैं और करोड़ों आदमी उनके गिर्द एकत्र हो रहे हैं और ज्यों ही वे लोग अनाज को उठाने के लिए अपने हाथ बढ़ाते हैं उन ढेरों के चारों ओर ऊंचे-ऊंचे वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं और उन ढेरों को अपनी ओट में ले लेते हैं और ये वृक्ष इस प्रकार एक दूसरे के साथ लगे खड़े हैं कि कोई अनाज का एक दाना भी नहीं ले जा सकता?

फिर उसने देखा कि हज़ारों सीढ़ियों के ऊपर बड़ी-बड़ी, शानदार मिलें हैं जो शीशे की बनी हुई हैं। जिनके भीतर चरखियां चल रही हैं और यह कपड़ा बुन रही हैं और यह कपड़ा लाखों, करोड़ों, अरबों गज तैयार होकर ऊपर आकाश की ओर पड़े बादल बनकर उड़ा जा रहा है और सीढ़ियों पर लाखों आदमी नंगे पड़े हैं और घिसट-घिसटकर

ऊपर चढ़ रहे हैं और कपड़े के लिए चीख रहे हैं और ज्योंही ये लोग बड़ी कठिनता से सीढ़ियां चढ़कर दरवाज़ों तक पहुंचते हैं कि चारों ओर ऊंचे-ऊंचे वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं एक दूसरे के साथ लगे हुए और उनकी ओट में वे मिलें और कारखाने छिप जाते हैं और लोग सीढ़ियों पर निढाल होकर गिर पड़ते हैं।

और फिर उसने देखा कि एक बहुत बड़ा बाग है, मीलों तक फैला हुआ, और उसमें एक बहुत बड़ा महल है—कई एक एकड़ क्षेत्रफल में फैला हुआ; और उस महल के आलीशान दरवाज़े के बाहर गगनचुम्बी सतूनों के पास एक दुबला-पतला आदमी खड़ा है, काला चश्मा लगाए, और उसके सामने हजारों-लाखों आदमियों का समूह है। जो पुरुष हैं उनके सिर कटे हुए हैं और जो स्त्रियां हैं उनकी छातियां। और यह समूह लाखों जवानों से पूछता है, "इस मीलों तक फैले नये बाग और इसके भीतर आलीशान महल में कौन रहता है?"

"मैं रहता हूं।"

"तुम कौन हो?"

"मैं भारत का सबसे बड़ा अफसर हूं। तुम कौन हो?"

"हम भारत हैं।" लाखों ज़बानें सुर्ख-सुर्ख पतली ज़बाने बोलने लगती हैं, "भूखा, नंगा, प्यासा भारत। हम इस महल के भीतर आना चाहते हैं क्योंकि हमारे पास कोई घर नहीं है, कोई ज़मीन नहीं है, कोई रोज़ी कमाने की सबील नहीं है।"

काला चश्मा पहने हुए वह दुबला-पतला आदमी बड़े धीमे और मृदु स्वर में कहता है, "ठहरो, मुझे 'बरतानिया-मुकट' से पूछना होगा तुम नहीं जानते कि वैधानिक राज्य के अनुसार..............."

लेकिन लोग चिल्लाकर कहते हैं, "दरवाज़ा खोलो, दरवाज़ा खोलो।"

वह दुबला-पतला आदमी भीतर चला जाता है। दरवाज़ा पूरी तरह बन्द नहीं है फिर भी नहीं खुलता और लोग हज़ारो, लाखों लोग चारों

ओर से आगे बढ़ते हैं और दरवाज़ा खोलने का प्रयत्न करते हैं। दरवाज़ा पूरी तरह बन्द नहीं है लेकिन फिर भी नहीं खुलता······

और फिर माली ने देखा कि यह दृश्य एकाएक लुप्त हो गया है और उसके स्थान पर एक शानदार कोर्ट के गुंबद पर हरे रंग का झंडा लहरा रहा है और कोर्ट के चारों ओर लम्बे-चौड़े बलोच सिपाही खड़े हैं लेकिन जैसे वे पत्थर के बुत हों, बिल्कुल निश्चेष्ट, हालांकि उस समय चारों ओर से कटे हुए सिरों वाले पुरुष आगे बढ़ रहे हैं और हज़ारों स्त्रियां अपने घायल शरीरों को अपने बालों में छिपाए आगे बढ़ रही हैं। इन स्त्रियों के हाथों में तेल के कड़ाहे उबल रहे हैं जिनमें उनके बच्चे तले जा रहे हैं। पुरुष अपने सिर अपने हाथों में लिए हुए हैं और उनकी आंखों से रक्त बह रहा है और स्त्रियों की आंखों से दूध के आंसू फूट रहे हैं और जहां पर उस दूध की एक बूंद गिरती वहां से मांस के जलने की सी आवाज़ उत्पन्न होती है।

और ये हज़ारों-लाखों पुरुष और स्त्रियां आगे बढ़ते हुए इस कोर्ट को चारों ओर से घेर लेते हैं। मक्खियों के भिनभिनाने का सा शोर उत्पन्न होता है और ऊंचा होता जाता है। इतने में कोर्ट का दरवाज़ा खुलता है और सुन्दर वस्त्रों से सजा हुआ एक व्यक्ति बाहर निकलता है और अपनी मृदु मुस्कान को अपने चेहरे पर लाकर पूछता है—

"तुम लोग क्या चाहते हो ?"

"हम अन्दर आना चाहते हैं।"

"तुम अन्दर नहीं आ सकते।"

"क्यों ?"

"यह जगह मेरी है।"

"तुम कौन हो ?"

"मैं पाकिस्तान का सबसे बड़ा अफ़सर हूं। और तुम कौन हो ?"

"हम पाकिस्तान हैं, ये महाजरीन हैं, हम लुटी हुई इसमतें हैं, हम तेल में भुने हुए बच्चे हैं, हम जिन्दगी की फरियाद

हैं, इन्सानियत का ज़ख़्म हैं, सरमायादारी का दाग़ हैं, जागीरदारी का ज़ुल्म हैं, मज़हब की लाश हैं, हमें अपने कलेजे से चिमटा लो, हमारे रिसते हुए नासूरों से मरहम की तरह लग जाओ ।"

उस मीठी मृदु मुस्कान के साथ इनकार में सिर हिलाते हुए वह व्यक्ति भीतर चला जाता है और भीतर से झांककर कहता है, "मुझे अफ़सोस है भाइयो, मैं ऐसा नहीं कर सकता ।"

"अगर तुम ऐसा नहीं कर सकते तो यह कोर्ट छोड़ दो और हममें आ मिलो ।"

लाखों आवाज़ें गूंजती हैं ।

"अफ़सोस है कि आप लोग जाहिल हैं, दस्तूरी हकूमत के आदाब, जिसके गवर्नर-जनरल पाकिस्तान का बराहे-रास्ता ताजे-बरतानिया से ताल्लुक है ···"

सुन्दर वस्त्रों वाला व्यक्ति भीतर चला जाता है । दरवाज़ा पूरी तरह बन्द नहीं है फिर भी नहीं खुलता । और लोग, हज़ारों-लाखों लोग चारों ओर से आगे बढ़ते हैं और दरवाज़ा खोलने की कोशिश करते हैं और दरवाज़ा पूरी तरह बन्द नहीं है लेकिन फिर भी नहीं खुलता ।···

और फिर माली ने देखा कि वह सब कुछ नहीं है केवल एक कार है जो दूर तक नये लगे हुए पौधों को रौंदती चली जा रही है । माली चीख़ता हुआ आगे बढ़ रहा है—ऐसा मत करो, ऐसा मत करो, ये नये पौधे हैं, ऐसा मत करो ! वह दौड़ते-दौड़ते गिर पड़ता है एक कुचले हुए पौधे के पास और फिर वह हाथ बढ़ाकर उस पौधे को उठा लेता है और दूसरे क्षण में वह पौधा उसके हाथ में एक लहराता हुआ सांप का फन बन जाता है और वह घबराकर और चीखकर उसे हाथ से छोड़ देता है और उसकी आंख खुल जाती है ।

"क्या हुआ ?" माली की पत्नी ने उससे पूछा । माली बोला, "ओह ! बड़ा भयानक और अजीब सपना था !"

वह आंखें मलता हुआ धीरे से अपनी खाट से उठा । उसने देखा कि

स्वतंत्रता की रात समाप्त हो रही है और उषा की किरण फूट रही है। वह नलाई का सामान उठाकर बगीचे में चला गया जहां सुबह उसने गुलाब के पेड़ पर एक नन्ही-सी कली को फूटते देखा था।

वह कली उस समय गुलाब का एक हंसता हुआ फूल बन चुकी थी और उसकी कोमल पत्तियों पर ओस की बूंदें कांप रही थीं!

कहानी की कहानी

एक दिन मैंने कहानी को बहुत सुन्दर वस्त्र पहनाए। उसे पश्मीने का फ़र्न पहनाया जिसपर कश्मीरी कारीगरों ने रंगारंग के बेल-बूटे काढ़े थे। उसकी गरदन में सुर्ख मोतियों की सतलड़ी पहनाई। उसकी आंखों में काजल लगाया। उसके बाल संवारे, उसके माथे पर बिंदिया लगाई। उसके पांव में घुंघरू बांध दिए और उसके हाथ में एक दफ़ देकर उसे अपनी वादी में भेज दिया।

कहानी बहुत शीघ्र वापस चली आई—उदास, परेशान, हैरान। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, बाल उलझे हुए, फ़र्न जगह-जगह से फटा हुआ। आंखों का काजल उड़ चुका था। घुंघरू निःस्वर थे।

मैंने घबराकर पूछा, "क्या हुआ, वहां तो कभी इस प्रकार तुम्हारा स्वागत न किया गया था। सभी रास्ते में आंखें बिछाए तुम्हारे प्रतीक्षित रहते थे। चरवाहों से बादशाहों तक सभी तुम्हारे सुन्दर, मनोहर गीत सुनने के लिए बेचैन रहते थे। जल्दी कहो, वहां तुम्हारे साथ ऐसा बर्ताव किसने किया ?"

कहानी बोली, "तुम्हारी वादी में आज कोई मेरे मीठे गीत सुनने के लिए तैयार नहीं। डल के किनारे छोटे-छोटे बच्चे सैनिकों के खेल खेल रहे हैं। औरतें चौक में खड़ी होकर सिपाहियों की तरह पहरा दे रही हैं। कारीगर कर्घों पर नये कश्मीर का ताना-बाना बुन रहे हैं। किसीके पास इतना समय नहीं है कि मेरे सुन्दर मुखड़े को देखे, मेरे होंठों से फूलों की तरह खिलते हुए गीत और मेरे पांव के नाज़ुक घुंघरुओं की मीठी झङ्कार सुने ! मुझे वहां से वापस आना पड़ा।"

मैंने कहा, "तो तुम युद्धक्षेत्र में गई होती।" कहानी बोली, "मैं वहां भी गई थी, एक पहाड़ी दर्रे पर। परवेज़ मोरचा लगाए दुबका बैठा था। उसके सामने दूसरे दर्रे पर रहमतखां मोरचा जमाए बैठा था। दोनों एक ही देश के रहनेवाले थे। एक बारामूले का खोजा था, दूसरा पुंछ का सुधन, और अब दोनों एक दूसरे की जान के प्यासे हो रहे थे।

परवेज़ बोला, "मुझे तुम्हारे मनोहर गीत नहीं चाहिए। मेरे सामने जलता हुआ बारामूला है। मेरी छोटी बहन की लुटी हुई इसमत है। खम्भे पर लटकी हुई मकबूल शेरवानी की लाश है। मेरे सामने से हट जाओ।"

दूसरे दर्रे से रहमतखां ने कहा, "मैं रियासत पुंछ का सुधन हूं। पलंदरी का रहने वाला जिसे मेरे दुश्मनों ने बमबारी करके तबाह, बर्बाद कर दिया है। जानती हो, हम लोग सभ्यता और कल्चर के नाते पंजाबी मुसलमानों का एक अङ्ग हैं। परवेज से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, मेरे सामने से हट जाओ।"

आर-पार परवेज़ और रहमतखां के मोरचे थे। बीच में नीलम के नगीने की तरह चमकती हुई एक घाटी थी। मैं नीचे घाटी में उतर गई लेकिन वहां कोई न था। घर उजड़े और वीरान पड़े थे। खेतों में बैल हल से जुते-जुते मर गए थे। चश्मे पर पानी के घड़े भरे हुए थे लेकिन वे चरवाहियां कहां थीं जो उन्हें अपने सिरों पर उठाए, अपनी भीगी पलकें झुकाए घूमती हुई पगडंडी के मोड़ पर मुर्ग़ाबियों की डार की तरह उड़ी-उड़ी चली जाएं। मैं अकेली ही खड़े-खड़े एक चश्मे के किनारे दफ़ बजाने लगी। इतने में दो व्यक्ति राइफ़ल लिए कहीं से निकल आए। एक ने मेरा हाथ ज़ोर से पकड़ लिया।

मैंने कहा, "मुझे छोड़ दो, मैं तुम्हें बहुत सुन्दर गीत सुनाऊंगी, दफ़ पर नाचूंगी।"

वह एक बड़ी निर्दयतापूर्ण हंसी हंसकर बोला, "हां, हां, गीत भी सुनेंगे, अभी पहले तुम्हारी चीखें तो सुन लें।"

फिर दूसरे आदमी ने भी मुझे पकड़ लिया और अपनी ओर घसीटने

लगा और मैं उन दोनों के हाथों में एकाएक काग़ज़ के एक पुर्जे की तरह टुकड़े-टुकड़े हो गई और चुरमुराकर ज़मीन पर गिरी पड़ी और वे मुझे इस प्रकार रूप बदलते देखकर बड़े घबराए और वहां से भाग गए।

इसी खैंचातानी में मेरा फ़र्न फट गया और घुंघरू टूट गए और मेरे माथे की बिंदिया नोच डाली गई—यह देखो, मैं अब तुम्हारी वादी में कभी नहीं जाऊंगी।

वह सिर झुकाकर रोने लगी।

मैं बहुत देर तक परेशान रहा। वह बहुत देर तक सिसकियां भरती रही। आख़िर मैंने उसे ढारस देते हुए कहा, "अच्छा, मैं तुम्हें वहां नहीं भेजता। आज हमारे नेता ताजमहल होटल में आनेवाले हैं। मैं तुम्हें रेलवे का क्लर्क बनाकर वहां भेजता हूं। हां, हमारे नेता का सम्मान ध्यान में रहे। वहां सभी ऊंचे वर्ग के लोग होते हैं। वे लोग सभ्य आचारों का बहुत ध्यान रखते हैं। कहीं कोई ऐसी-वैसी बात न हो जिससे मेरी कला बदनाम हो जाए।"

मैंने कहानी को चालीस वर्ष का रेलवे का क्लर्क बना दिया। नाम मिलवांकर, जो दादर कैबिन नम्बर १ में काम करता है, जिसके दांत कत्थई रंग के हैं और जो चूना और तम्बाकू मिलाकर खाता है जिसके पांच बच्चे हैं, एक पत्नी है, एक बूढ़ी मां है, दो जवान बहनें हैं जिनकी अभी शादी नहीं हुई। पत्नी का एक भाई है जो दोनों आंखों से अंधा है और जो उसे दहेज में मिला था। मिलवांकर का बाप भी रेलवे में काम करता था, इसी लाइन पर। और अब मिलवांकर भी काम करता है। उसे यहां काम करते हुए पचीस वर्ष हो गए हैं लेकिन वह आज तक कभी ताजमहल होटल नहीं गया। ताजमहल होटल तो एक ओर वह कभी बम्बई सेन्ट्रल के रेलवे रेस्तोरां में बैठकर खाना नहीं खा सका। इसलिए मैं आज उसे ताजमहल होटल में भेज रहा था, जहां हमारे नेता आनेवाले थे।

पुराना साल जा रहा था, नया साल उत्पन्न हो रहा था। यह रात बड़ी सुहानी थी। मैंने लगभग सात बजे ही मिलवांकर को ताजमहल होटल भेज

दिया और स्वयं सैर करने समुद्र के किनारे चला गया। वहां बहुत देर तक टहलता रहा और सीप और घूंघों को इकट्ठा करके उनका मकान बनाता रहा और फिर उनके भरोसे पर किराएदारों से पगड़ी वसूल करता रहा और फिर समुद्र की एक बहुत बड़ी लहर आई और मेरा घरौंदा बहा-कर ले गई और मेरे वस्त्र भी गीले कर गई और मैं उसी प्रकार निराश-सा होकर वापस घर लौट आया। रास्ते में किनारे के निकट मांझी अपनी नावों के बादबान ठीक कर रहे थे। रात को समुद्र में मछलियां पकड़ने जाएंगे। एक बूढ़ा अपने कुत्ते से बातें किए जा रहा था। एक जोड़ा रेत पर एक दूसरे से चिमटे लेटा था। परे पुलिस का सिपाही सिग्रेट पी रहा था। दूर नारि-यल बेचने वाला पीठ मोड़े अपनी हांक लगाए जा रहा था। एकाएक आकाश पर सब सितारे खिलखिलाकर हंस पड़े। चंचल बच्चों की तरह जैसे वे मेरी टूटी हुई चप्पल, मेरे फटे हुए पायजामे और रेत में सनी हुई पुरानी कमीज़ का मज़ाक उड़ा रहे हों। और मैं जल्दी-जल्दी से क़दम उठाता हुआ घर चला आया और मैंने मन में सोचा कि अब मैं कभी इतना बुरा लिबास पहनकर तट पर नहीं जाऊंगा। आज नये वर्ष का 'जन्मदिन' है और आज सब लोग मेरे वस्त्र देखते हैं, मेरा दिल नहीं देखते।

मैंने दरवाज़ा खोला और वस्त्र बदले और खाना खाकर एक अच्छी-सी पुस्तक हाथ में ले बिस्तर पर लेट गया। देर तक उसे पढ़ता रहा। ग्यारह बज गए, बारह बज गए लेकिन मिलवांकर वापस न आया। मैंने मुस्कराकर मन ही मन में कहा—आज पहली बार ताजमहल होटल गया है। इतनी शीघ्र काहे को लौटेगा। इतना सोच मैंने पुस्तक को बन्द कर दिया। बत्ती बुझा दी और बड़े मज़े से नरम-नरम गुदगुदे बिस्तर पर पांव फैलाकर सो गया। न जाने कितनी देर तक सोता रहा। एकाएक टेलीफ़ोन की घण्टी बजी। मैंने बत्ती जलाकर देखा। घड़ी में तीन बज रहे थे। यह इस समय कौन टेलीफ़ोन कर रहा था, मैंने क्रोध से चोंगा उठाया और तीखे स्वर में कहा, "कौन है?"

"मैं हूं मिलवांकर।"

"अरे, कहां हो अभी तक! ताजमहल से बोल रहे हो?" मैंने पूछा।

"नहीं, मैं कोलाबे के थाने से बोल रहा हूं।" मिलवांकर ने बड़ी घबराहट में उत्तर दिया। "पुलिस ने मुझे गिरफ्तार कर लिया है और बिना ज़मानत रिहा नहीं करती, आप अभी आ जाइए।"

खैर साहब, मैं रात के तीन बजे उठा और भागा-भागा थाने गया और उसे ज़मानत पर छुड़ा लाया। उसकी निकर फटी हुई थी और उसका मुंह सूजा हुआ था और उसके चेहरे पर खराशें पड़ी हुई थीं।

मैंने पूछा, "तुम्हें पुलिस ने मारा है?"

"नहीं।"

"तो क्या मुंह बिल्लियों से नुचवाते रहे?"

वह बोला, "हां, बड़ी शरीफ़ बिल्लियां थीं, बड़ी सुन्दर साड़ियां पहने हुए थीं और शराब में धुत थीं।"

मैंने कहा, "तुम थाने में कैसे पहुंच गए, मैंने तो तुम्हें ताजमहल होटल भेजा था।"

मिलवांकर बोला, "जभी तो—आपने मुझे पहले बता दिया होता तो मैं अपने दो-चार साथियों को ले जाता। पहले तो वे लोग मुझे भीतर ही नहीं घुसने देते थे क्योंकि मेरा लिबास बहुत शानदार न था। निकर, यह कमीज, यह जूता, वहां के तो बैरा लोग भी बहुत अच्छा लिबास पहनते हैं। यह आपने क्या किया। अगर आपको मुझे वहां भेजना ही था तो कोई सूट ही दिया होता या कोई अच्छा-सा हिन्दुस्तानी लिबास। या खद्दर का श्वेत उज्ज्वल कुर्ता या धोती और जवाहर जैकट और सिर पर गांधीटोपी। आजकल यह ड्रैस भी खूब चलता है वहां। सुना है किसी जमाने में इस ड्रैस वाले को वहां घुसने नहीं देते थे लेकिन आज रात को तो वहां इस ड्रैस का बहुत आदर हुआ।" मैंने कहा, "तुम अपनी बात सुनाओ।"

मिलवांकर बोला, "पहले तो उन लोगों ने मेरे वस्त्रों, मेरी शकल सूरत का विरोध किया लेकिन चूंकि मेरी सीट बुक थी और ठीक उसी समय नेताजी सीढ़ियां चढ़ते आ रहे थे इसलिए बटलर ने मुझे अपनी परेशानी

में अधिक देर तक न रोका। उसकी नज़र नेताजी पर पड़ गई और मैं हॉल के भीतर हो लिया और अपनी सीट पर जा बैठा। मेरे मेज पर दो जोड़े पहले से बैठे थे। एक पारसी जोड़ा था, एक गुजराती, दोनों शराब पी रहे थे।

वेटर ने आकर मुझसे पूछा, "आप क्या पिएंगे ?"

मैंने कहा, "ठंडा पानी।"

वेटर नाक सिकोड़कर गरदन ऊंची उठाकर अपनी बो संवारता हुआ चला गया। वे दोनों जोड़े मेरी ओर देखकर घृणा से मुस्कराए, फिर उन्होंने गरदन मोड़कर 'हैकमैन ब्वायज़' के बैंड की ओर देखा जहां से एक नया संगीत फूट रहा था और जहां श्वेत और सुर्ख लड़कियां हुल्ला-हुल्ला हवाईन नृत्य कर रही थीं। ये लड़कियां दो-एक जगहों के अतिरिक्त, बिलकुल नंगी थीं और बार-बार कूल्हे घुमाती फिरती थीं। अभी डांस शुरू ही हुआ था कि नेताजी ने प्रवेश किया और एकाएक नृत्य रुक गया और 'वन्दे मातरम्' का संगीत गूंजने लगा।

फिर नेताजी को हार पहनाए गए।

तालियां बजाई गईं।

एड्रेस पेश किया गया।

फिर तालियां बजाई गईं।

"ठहरो, ठहरो," मैंने मिलवांकर को टोककर कहा, "यह तो तुमने बताया ही नहीं कि एड्रेस में क्या था, उत्तर क्या दिया गया ?"

मिलवांकर ने बड़े घृणापूर्ण स्वर में कहा, "एड्रेस में वही था जो ऐसे एड्रेसों में होता है। यानी नेताजी, आप बड़े तीसमारखां हैं। अगर आप न हों तो देश डूब जाए, प्रलय आ जाए। यह हमारा अहोभाग्य है कि देश की बागडोर आप जैसे इत्यादि प्रकार के बुद्धिमानों के हाथ में है, वगैरा-वगैरा। और उत्तर भी इसी प्रकार का था यानी आप लोगों ने मेरा बहुत ही आदर-सम्मान किया है। वास्तव में मैं बड़ा आदमी नहीं हूं। बड़ी-बड़ी समस्याओं की छाया मुझपर पड़ रही है अन्यथा अभी देश के सामने बहुत-से बड़े काम

हैं। ऐसे बड़े काम जिनके सम्बन्ध में बड़े सोच-विचार की आवश्यकता है। इस समय देश के सामने बहुत बड़ा क्राइसिस है और अब मैं नहीं जानता कि क्या होगा? आगे क्या होने वाला है? कौन इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी ले। इतना कह सकता हूं कि आप लोगों को मुझपर विश्वास रखना चाहिए और देश में शान्ति रखनी चाहिए। इसके लिए यह बहुत आवश्यक है कि आप लोग शराब न पीएं, सिनेमा हॉल में सिग्रेट न पीएं और बारह बजे के बाद कम्बल ओढ़कर सो जाएं। नहीं तो देश तबाह हो जाएगा और चीन की तरह यहां भी समाजवाद फैल जाएगा। इसलिए पूंजीपतियों को चाहिए कि वे सरकार का साथ दें और मैं मज़दूरों को चेतावनी देता हूं कि वे हड़तालें न करें, पैदावार को बढ़ाएं। उस समय मुझसे न रहा गया। मैंने अपनी सीट से उछलकर कहा, 'मैं आपसे एक प्रश्न करना चाहता हूं?' सब लोग मेरी ओर घूर-घूरकर देखने लगे। 'बैठ जाओ, बैठ जाओ' की आवाज़ें आने लगीं।

मैंने कहा, "नेताजी, मेरा वेतन चालीस रुपये है।"

एक आदमी बोला, "चालीस रुपये वाले आदमी का ताज में क्या काम ?"

"इसे बाहर निकाल दो, इसे बाहर निकाल दो," बहुत-से सज्जन एक दम चिल्लाए।

मैंने कहा "नेताजी, आप मज़दूरों के बड़े हितैषी बनते थे। आज आपको ताजमहल में आने का अवकाश है, विश्वविद्यालयों से ऊट-पटांग डिगरियां लेने का समय है, व्यर्थ के सम्मेलनों में शामिल होने की फुर्सत है। आप को रेलवे के एक निर्धन क्लर्क का जीवन देखने की फुर्सत नहीं। ज़रा दो मिनट के लिए मेरी कहानी सुन लीजिए न ?"

"देखिए मैं अभी आपको बताए देता हूं। मेरा नाम मिलवांकर है। मैं दादर कैबिन नम्बर १ पर............"

"बैठ जाओ, बैठ जाओ, चुप करके बैठो रहो, "दो-चार व्यक्तियों ने मुझे पकड़ लिया।

मैंने चीखकर कहा, "नहीं, मैं नहीं बैठूंगा। मैं अपनी कहानी सुनाकर रहूंगा। मेरे कपड़े फटे हुए हैं। मेरे घर में बच्चे भूखे हैं। मेरी दो बहनें हैं जिनकी मुझे शादी करनी है और मेरा वेतन चालीस रुपये है। मैं तो नेता जी को अपनी कहानी सुनाकर रहूंगा। वह तो स्वयं कहते हैं कि वह..."

इस पर बहुत शोर मचा और मेरी मेज़ पर जो दो औरतें बैठी थीं उन्होंने क्रोध में आ मेरा मुंह नोच लिया और दो-एक भद्रपुरुषों ने मुझे पीटा भी। पुलिस आ गई। और उसने मुझे गिरफ्तार कर लिया और कोलाबा के थाने में ले गई।"

मैं सिर हिलाकर हंसने लगा, "तो तुम्हारी कहानी वहां भी किसीने नहीं सुनी।"

मिलवांकर ने क्रोध में आकर कहा, "आपने मुझे वहां भेजा ही क्यों था? वहां इन बातों का किसके पास समय है। आपने बेकार मुझे उनके रंग में भंग डालने के लिए भेज दिया लेकिन इससे कुछ हुआ थोड़े ही। थोड़ी देर के लिए गड़बड़ हुई, फिर सब लोग हंसने लगे। जब मैं हॉल से बाहर निकाला जा रहा था सब लोग मुझपर हंस रहे थे और हैकमैन बैंड ने एक नया हवाईन नृत्य आरंभ किया था।"

मिलवांकर ने सिर हिलाकर कहा, "अब मैं वहां कभी नहीं जाऊंगा" और वह मेरी ओर पीठ मोड़कर अलग बैठ गया—रूठे हुए बच्चे की तरह।

मैं बहुत देर तक सिर खुजाता रहा। कुछ समझ में न आया। अब क्या करूं, उसे कहां भेजूं? आखिर सोच-सोचकर मैंने मसखरों वाला लिबास तैयार किया और उसे कहानी को पहनाया। मैंने कहानी की ऊंची नाक को मोटा कर दिया। उसके सुर्ख होंठों को श्वेत कर दिया; उसके माथे पर एक बहुत बड़ा मस्सा लगाया और उसके सिर पर एक लम्बे फुंदनेवाली तिकोनी टोपी पहनाकर उससे कहा, "जाओ, जहां पर नन्हे-नन्हे बच्चे खेलते हैं और निश्चिन्त और सरल आत्माएं मुस्कराती हैं। वह तुतलाता हुआ नन्हा संसार तुम्हारी प्यारी-प्यारी कहानियां सुनेगा और जीवन में फिर से स्वर्ग-

सी बहार आ जाएगी। जाओ मसखरे, जाओ! तुम रीछ की तरह नाचो, मदारी की तरह डुगडुगी बजाओ और बन्दर की तरह नाचकर बच्चों के संसार में हंसी के फव्वारे उछाल दो।"

मसखरा अपनी गधे की झोल संभालता हुआ मुझसे विदा हुआ और कोई पांच-छः दिन तक वापस नहीं आया। मैंने सोचा नियम-विरुद्ध अबके कहानी लम्बी हो गई, मैं तो इतनी लम्बी कहानियां नहीं लिखता हूं। अबके कहानी को क्या हुआ जो इतनी लम्बी हो गई। अभी तक नहीं आई। हफ़्ता होने को आया। इतवार के दिन जब मैं प्रगतिशील लेखक संघ की बैठक में शामिल होने जा रहा था किसीने दरवाज़े की कुंडी खटखटाई। मैंने देखा मसख़रा है। लेकिन तिकोनी टोपी गायब है। नाक मोटी नहीं है। माथे का मस्सा ग़ायब है। गधे की झोल नहीं पहिन रखी बल्की सिपाहियों वाला लिबास पहने दरवाज़े पर खड़ा लैफ़्टराइट कर रहा है।

मैंने डरते-डरते दरवाज़ा खोला।

"क्या मुझे गिरफ़्तार करने आए हो?" मैंने कहानी से पूछा।

मसख़रा मेरे सामने बैठ गया, राइफ़ल थामकर बोला "हां, कुछ ऐसी ही बात है?"

"क्यों क्या हुआ?"

मसखरा चुप रहा। बहुत देर के बाद बोला—

"अब के मैं बहुत खुश था, सोचता था लोगों को खूब-खूब हंसाऊंगा। स्टेशन के निकट ही मुझे सात-आठ साल का एक बच्चा मिल गया। वह मेरी ओर बड़े ध्यान से देख रहा था। मैंने उसके पास जाकर कहा, "कहानी सुनोगे? बड़ी अच्छी कहानी है मेरे पास।"

वह बोला, "मेरे पास कहानी सुनने का समय नहीं है, क्योंकि मेरे मां-बाप मर चुके हैं और अब मैं रेल में संतरे की गोलियां बेचता हूं। मेरी एक छोटी-सी बहिन भी है, उसे देखोगे?"

वह मुझे स्टेशन से बाहर ले गया। एक कोने में एक बच्ची पड़ी थी और चुपचाप हाथ फैलाए भीख मांग रही थी।

वह बोला, "जब हम लोग कराची में रहते थे तो रात को बड़ी अच्छी-अच्छी कहानियां सुनते थे । अब हमारे पास कहानी सुनने के लिए समय नहीं है। संतरे की गोलियां लोगे ? एक आने में छः, एक आने में छः, एक आने में छः !" फिर धीरे से बोला, "अगर तुम अपना लिबास मुझे दे दो तो मेरा ख़्याल है कि बहुत से लोग मुझसे संतरे की गोलियां खरीदेंगे ।"

मैं वहां से भाग निकला ।

वहां से निकलकर मैं एक गली में घुस गया । कुछ लौंडे पतंग बना रहे थे । मैंने कहा, "मैं तुम्हें रंग-रंग की पतंगों को ऊंचा, सबसे ऊंचा उड़ाने का तरीका बताता हूं । यह तरीका मैंने केशर देश की परी से सीखा था । केशर देश की परी···

मैं यहीं तक कहने पाया था कि उसमें से एक लड़का बोल उठा, "बड़े मियां ! क्यों हमारा समय खराब करते हो ? हम लोग पतंग बनाते हैं, पतंग उड़ाते नहीं हैं । वे दूसरे बच्चे होते होंगे । हम लोग अगर शाम तक पचास पतंग नहीं बनाएंगे तो भूखे मर जाएंगे । तुम यहां से नौ-दो ग्यारह हो जाओ !"

अतएव मैं वहां से नौ-दो ग्यारह हो गया और एक घर के भीतर घुस गया । बाहर दरवाज़े पर ताला था लेकिन मेरे लिए क्या रोक-टोक थी ! मैं भीतर जा घुसा क्योंकि घर के भीतर से बराबर चिल्लाने की आवाजें आ रही थीं । भीतर जाकर मैंने देखा कि एक काना बच्चा है । बस चार-एक वर्ष का होगा और वह एक दूधपीती बच्ची को बेतरह पीट रहा है ।

मैंने उसे कहा, "बच्चे बच्चों को प्यार करते हैं, पीटते नहीं हैं ।

"यह रोती है," बच्चे ने उत्तर दिया ।

"यह क्यों रोती है ?" मैंने पूछा ।

"यह भूखी है ।"

"इसकी मां कहां है ?"

"मां कारखाने गई है ।"

"बाप कहां है ? "

"बाप भी कारखाने गया है।"

"मां इसको कारखाने क्यों नहीं ले गई ?"

"मां काम करती है। मां कारखाने गई है। यह भूखी है। मैं भी भूखा हूं। यह रोती है, मैं इसे मारता हूं।"

मैंने कहा, "इसे मारो नहीं, देखो फिर हम तुम्हें बहुत अच्छी कहानी सुनाते हैं। एक था राजा।"

"राजा लोग बहुत बुरे होते हैं।" लड़के ने कहा।

"तुमसे किसने कहा ?" मैंने पूछा।

"बापू कहते हैं। राजा अच्छे नहीं होते, ये भूखा रखते हैं।"

"अच्छा तो हम तुम्हें परियों की कहानी सुनाते हैं, । वहां भूख नहीं होती। परियों का देश बहुत सुन्दर है, वहां बड़े सुन्दर मकान होते हैं। वहां शहद और दूध की नहरें बहती हैं।"

"अहा-हा, दूध ! हमें दूध ही तो चाहिए।" लड़का उछल पड़ा।

"तुम कहानी तो सुनो।"

"नहीं, हमें दूध दो। हमारी बहिन दूध मांगती है। यह रोती है, हम इसे मारते हैं।"

"और इन परियों के देश में एक दिन प्रेम का राजा ...."

"हमें प्रेम का राजा नहीं दूध चाहिए। प्रेम का राजा नहीं सुनते हम। दूध, दूध, दूध ...."

लड़का ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा और अपनी नन्हीं बहिन को पीटने लगा। मैं जल्दी से वहां से निकल आया।

फिर वहां से निकलकर मैं बहुत-सी जगहों पर गया। बहुत-सी गलियों में, बाजारों में, गली-कूचों में, खेतों में, जंगलों में, शहरों में, देहातों में। किसी बच्चे ने मेरी कहानी नहीं सुनी। वे सब परेशान हो चुके हैं। बूढ़े होते जा रहे हैं, और उनकी हंसी कुम्हलाए हुए फूल की तरह मुरझाकर धूल में गिर चुकी है"

"तो अब तुम यह सिपाही का लिबास पहनकर क्यों आए हो ?" मैंने

पूछा।

"इसलिए कि अब मैं लड़ना चाहता हूं। उस हंसी के लिए लड़ना चाहता हूं। मैंने सुना है कि चीन में एक किसान है। 'ली' उसका नाम है। वह उसी हंसी के लिए लड़ रहा है। और मैंने सुना है कि इण्डोनेशिया में एक कान खोदनेवाला नूरउद्दीन है और वह उसके लिए लड़ रहा है, और मैंने सुना है कि यूनान में एक लोहार है मारकस, वह उसके लिए लड़ रहा है और मैंने सुना है कि बर्मा और मलाया और हिन्दचीन के घने जंगलों में छोटे-छोटे बच्चे भी उसके लिए लड़ रहे हैं। मैं भी उस हँसी के लिए लड़ूंगा। अब मैं एक सुन्दर नर्तकी नहीं बनना चाहता। हंसाने वाला मसखरा भी नहीं बनना चाहता। निर्बल आवाज़ उठाने वाला क्लर्क भी नहीं बनना चाहता। मैं चाहता हूं कि मुझे एक मोटी-सी कारतूस की गोली बना दो और मुझे वहां भेज दो जहां मनुष्य मनुष्य पर अत्याचार के विरुद्ध लड़ रहा है!"

△△△

4-66-3-2

यदि आप चाहते हैं
कि राष्ट्रभाषा में प्रकाशित
नित नई उत्कृष्ट पुस्तकों का परिचय
आपको मिलता रहे,
तो कृपया अपना पूरा पता
हमें लिख भेजें।
हम आपको इस विषय में
नियमित सूचना देते रहेंगे।

कृश्न चन्दर-साहित्य

उपन्यास

चांदी का घाव	...	४·५०
सितारों से आगे	...	२·५०
मेरी यादों के चिनार	...	३·००
उलटा वृक्ष	...	३·००
एक गधे की आत्मकथा	...	२.००
एक गधे की वापसी	...	२·००
ग़द्दार	...	२·००
एक गधा नेफा में	...	३·५०

कहानियां

पूरे चांद की रात	...	३·००
गरजन की एक शाम	...	३·००
कश्मीर की कहानियां	...	३·००
काला सूरज	...	२·५०
कांच के टुकड़े	...	२·००
सपनों का कैदी	...	२·००
दिल, दौलत और दुनिया	...	२·५०
आधे घंटे का खुदा	...	३·००
प्यास	...	२·००

नाटक

दरवाज़े खोल दो	...	२·००

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली